श्री हेमकुँट दर्शन



डा० तारा सिंह

१ओं सतिगुरप्रसादि ॥

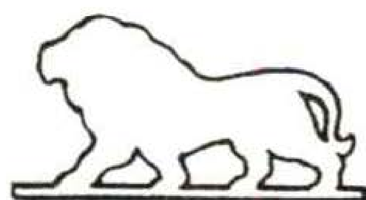
श्री हेमकुंट दर्शन

अथवा

'देवलोक दर्शन'

लेखक :

डाकटर तारा सिंह



सिंघ ब्रदर्ज़

अमृतसर

प्रकाशक :
सिंघ ब्रदर्ज़
बाज़ार माई सेवां, अमृतसर
S.C.O. 98, सिटी सैंटर, अमृतसर

इस पुस्तक का पंजाबी और अंग्रेज़ी रूप भी उपलब्ध है।

ISBN 81-7205-021-6

जनवरी 1979, अगस्त 1979, मई 1984, मई 1987,
जुलाई 1988, जून 1989, मई 1991, जुलाई 1993, जून 1998,
दश्म् संस्करण जून 2000

मूल्य : 6-00

प्रिंटर :
प्रिंटवैल्ल, 146, इंडस्ट्रीयल फ़ोकल पुआइंट, अमृतसर

विषय-सूची

भूमिका

आदरणीय डा. तारा सिंह जी अपनी पंजाबी पुस्तक *पंज सुच्चे मोती* द्वारा आध्यात्मिकता में विश्वास रखने वाले जन-समुदाय में भली-भांति प्रसिद्ध हैं। आपके द्वारा लिखित पुस्तक *श्री हेमकुण्ट दर्शन* यद्यपि आकार में छोटी है, परन्तु अपने में अद्वितीय रचना है। सन् १९७६ से १९७८ तक पंजाबी भाषा में इसके चार संस्करण छप चुके हैं जो इसकी प्रसिद्धि के परिचायक हैं। हिन्दी भाषा-भाषी लोग जो इस परम पवित्र तीर्थ की महानता में विश्वास रखते हैं, के अनुरोध पर यह हिन्दी संस्करण छप रहा है।

श्री हेमकुण्ट दर्शन अपने प्रकार की पहली पुस्तक है जो इस पावन-स्थलों को विभिन्न पहलुओं से संसार के समक्ष प्रस्तुत करती है।

हम प्राचीन ग्रन्थों में पढ़ते चले आ रहे हैं कि उतराखंड देवलोक है, परन्तु आज के समय अपनी आँखों द्वारा देखकर इसका वर्णन करने वाले डा. तारा सिंह जी हैं। हो सकता है कि इस पुस्तक में लिखित बातें आश्चर्य-जनक लगें, परन्तु ज्ञान-नेत्रों के खुल जाने से कुछ भी असम्भव प्रतीत नहीं होता।

मेरी जानकारी के अनुसार आप प्रथम व्यक्ति हैं जो आज तक श्री हेमकुण्ट की कठिन तपो भूमि पर कई कई दिन अकेले निवास करते रहे हैं, और जो कुछ वहां अपनी आँखों से देखा है, उसे अपनी अनूठी भाषा में वर्णित कर दिया है।

आप देखने में साधारण प्रतीत होते हैं, परन्तु मैं निजी अनुभव के आधार पर निरसंकोच कह सकता हूं कि आपका आध्यात्मिक जीवन बहुत ऊंचा है और आप इस संसार में इस प्रकार अपना जीवन व्यतीत कर रहे हैं जैसे जल में कमल।

मेरा पूर्ण विश्वास है कि इस रत्न-ग्रन्थ से आध्यात्मिक विश्वास रखने वाले सज्जन अपना जीवन श्रेष्ठ बनाने में कृत कृत्य होंगे।

नाहन
हिमाचल प्रदेश

धर्म प्रकाश
एडवोकेट

उत्तराखंड स्वर्गलोक है

श्री अकालमूर्त, कर्तापुरुष, जो रूप, रंग तथा रेख से न्यारे हैं, सर्वव्यापक हैं, समय तथा स्थान की मर्यादा से परे हैं, शाश्वत हैं, सदैव ही स्थिर रहेंगे, जिनके बिना अन्य कोई दूसरी हस्ती है ही नहीं, सब कुछ अपने आप ही हैं। वे एक बड़े जादूगर भी हैं, जिन्होंने अपने आस्तित्व के भीतर ही जादूगरी का खेल, यह रचना रची है।

जिस प्रकार यह जादूगर बेअन्त है, उसी प्रकार उनके इस दृष्यमान खेल का भी कोई अन्त नहीं।

इस खेल की एक अनोखी बात यह है कि कर्तापुरुष हर जीव के अन्दर बिराजमान होकर, सब कुछ स्वयं करते तथा करवाते हैं, पर यह जीव दृढ़ निश्चयी है कि सब कुछ "मैं" करता हूं। अकाल पुरुष की सर्वव्यापक ज्योति अर्थात् सत्ता को न समझता हुआ, अपनी अस्तित्व-हीन सत्ता को "अहं" मान कर एक पृथ्क अस्तित्व मान रहा है।

परन्तु फिर भी जिस मनुष्य को जितना प्रकाश मिला है, उसके अनुसार इस रचना को भिन्न-भिन्न प्रकार से देखता है। कोई इसको सदैव रहने वाला संसार मानता है, कोई नश्वर समझता है तथा किसी को यह सब कुछ एक स्वप्नवत ही नज़र आ रहा है। जिस पर ज्योति के पूर्ण प्रकाश की कृपा हो गई है, उसकी बुद्धि से जादूगरी का प्रभाव समाप्त हो जाता है तथा सब कुछ एक परमात्मा ही नज़र आता है।

ऐसी अनोखी रचना की कहानियां भी विचित्र हैं, परन्तु हमारा विषय केवल "श्री हेमकुण्ट" है, जो कि उत्तराखंड में सुशोभित है। इस लिए भूमिका के रूप में पहले थोड़ा सा इस उत्तराखंड का वर्णन करना उचित होगा, जो कि विशेष प्रकार से जोशीमठ से अगले पर्वतों के समूह का नाम है।

धरती का यह टुकड़ा पृथ्वी का एक विशेष अंग है, जिसकी महत्ता प्राचीन समय से ही स्वीकार की जा रही है। यहां हज़ारों वर्षों से जगत-प्रसिद्ध योगी, तपस्वी, ऋषि, मुनि इत्यादि कठिन तप करते आए हैं, जिनके भजन पाठ, तप तथा साधना ने यहां के वायुमण्डल में एक अनोखा विस्मादमय रस भर दिया है तथा कई पक्षों से प्रभाव-जनक बना दिया है। यहां पर अनेक विचित्र लीलाएं होती आई हैं। यह बात प्रसिद्ध है कि इन पहाड़ों पर किया हुआ तप शीघ्र फल देने वाला है। कोई भी जिज्ञासु यहां के पवित्र वायुमण्डल के प्रभाव से अछूता नहीं रहता, पर शर्त केवल एक है कि नीयत शुद्ध होनी चाहिए। जो हृदय दूषित हो, उस पर सुगन्ध का छींटा व्यर्थ सिद्ध होगा।

केवल यही नहीं, प्राचीन समय से ही उत्तराखंड को देवलोक कहा जाता है, जहां भिन्न-भिन्न प्रकार के देवता निवास करते हैं। मन्धगादम पहाड़ों का समूह, जिस में बद्रीनाथ का पहाड़ एवं आसपास के पर्वत सम्मिलित हैं, "इन्द्रलोक" कहलाता है, जहां इन्द्र राज्य करता माना गया है। यहीं इन्द्र का खज़ानची "कुबेर" नामी पर्वत पर निवास करता है। यह पहाड़ बद्रीनाथ से उत्तर पश्चिम की ओर कुछ दूरी पर है। कैलाश मानसरोवर तथा आसपास के पर्वत "शिवलोक" कहलाते हैं। कैलाश पर्वत पर शिवजी निवास करते हैं। शिवजी तथा अष्टभुजी के प्रत्यक्ष होने सम्बंधी एक घटना का लेखक को ज्ञान है, परन्तु यह इस पुस्तक का विषय नहीं।

पुराणों तथा महाभारत ने सिद्ध किया है कि स्वर्गलोक (देवलोक) ऊपर कहीं आकाश में नहीं है, अपितु उत्तराखंड ही स्वर्गलोक है, जिसमें इन्द्रलोक एवं शिवलोक सम्मिलित हैं।

गुरुवाणी में इस सम्बन्ध में संकेत मिलते हैं, जैसे :—

"इन्द्रलोक शिवलोकहि जैवो
ओछे तप करि बाहिर ऐवो" (कबीर जी 692

स्वर्गलोक की अदृश्य दुनिया है तो उत्तराखंड में ही, पर हम को इस बात का विश्वास नहीं आता, क्योंकि ऊपर लिखे शास्त्रों ने यह बात स्पष्ट करने का यत्न नहीं किया कि यह गुप्त दुनिया किस ढंग से बसती है।

सतगुरु जी की कृपा से लेखक को, जिसे श्री हेमकुण्ट तपोभूमि पर चालीस दिन से लेकर ढाई महीने तक, कुछ बार रहने का अवसर प्राप्त हुआ, उस समय, इस सम्बंध में जो कुछ उसने देखा, सुना या उसके अनुभव में आया, उसे संक्षेप में यहां बताने का यत्न किया है। उन दिनों यात्री इस स्थान पर थोड़ी संख्या में आते थे, अतः कई बार दस-दस बारह-बारह दिन लेखक को मानवजाति के दर्शन नहीं होते थे। इस प्रकार का एकान्त देवलोक के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करने में बहुत सहायक सिद्ध हुआ।

देवताओं का शरीर पच्चीस सूक्ष्म तत्वों से निर्मित होता है, इस लिए मातृलोक के निवासी उनको अपनी आंखों से नहीं देख सकते। ये देवता स्वेच्छा से दुनिया के लोगों को दिखाई दे जाते हैं या वे लोग जो भगवान की कृपा से दिव्य दृष्टि प्राप्त कर लें, वे इन्हें देख पाने में समर्थ होते हैं। परमात्मा की ओर से देवताओं को बहुत सी, कई प्रकार की बड़ी-बड़ी शक्तियां प्राप्त हैं। वे अन्तर्यामी होते हैं, तथा मानव मन के विचारों को दूर तथा पास से, समझ लेने की शक्ति रखते हैं। अपने उपासकों को, अपनी

शक्ति के अनुसार, वरदान तथा अभिशाप दे सकते हैं। पहाड़, बर्फ, जल, थल तथा मर्त्यलोक के स्थूल तत्व इनके लिए अर्थहीन हैं, जैसे इनका कोई अस्तित्व ही नहीं है। ये इनको पार कर जाते है। लम्बी उड़ानें क्षणभर में भर लेते हैं। ये हर भाषा (हिन्दी, पंजाबी, अंग्रेजी, बंगाली, मद्रासी आदि) समझ सकते हैं तथा बोल सकते हैं (एक बार इन्होंने लेखक से अंग्रेजी में भी बात की थी)। इनकी अपनी भाषा कुछ और ही है। कुछेक बार अपने मन्त्र जपते लेखक ने सुना है, पर समझ न सका। हवा की भांति जल्दी-जल्दी बोलते हैं।

अनन्त परमात्मा की लीला बहुत विचित्र है। इस ही वायुमण्डल में सर्वव्यापक परमात्मा स्वयं विद्यमान हैं तथा इसी वायुमण्डल में मायारूपी दुनिया स्थित है। इसी में भूत-प्रेत आदि बसते हैं। देवताओं की अदृश्य दुनिया भी इसी वायुमण्डल में स्थित है। जिस प्रकार देवता सूक्ष्म हैं, उसी प्रकार इनकी दुनिया भी सूक्ष्म है, जिसमें ये विचरण करते हैं। जो हमें पर्वत, जल आदि दिखाई देते हैं, इनके भीतर ही देवताओं के सुखदायी तथा अमूल्य निवास स्थान तथा मन्दिर आदि बने हुए हैं।

महाभारत के वनपर्व अध्याय 159—163 के अनुसार इन्द्र देवता से शस्त्र विद्या प्राप्त करने हेतु वीर अर्जुन इन्द्रलोक (उत्तराखंड) में ही आया था। स्पष्ट है कि वे लोग देवताओं की न दिखाई देने वाली दुनिया से, सम्पर्क स्थापित करने के साधन जानते थे।

महाभारत के युद्ध के पश्चात पांचों पांडव इसी ओर आकर वर्फ में गले थे। पहले इन्होंने पंडुकेश्वर पहुंच कर अपने पूर्वज पांडुराज के तप की स्मृति में एक मन्दिर बनाया। फिर पंडुकेश्वर के सामने, अलकनंदा नदी के पार, एक ग्यारह हजार फुट ऊंची चोटी पर जाकर, अन्तिम वार जुआ खेला। इस जगह एक

पत्थर पर चौपड़ की लकीरें आज भी देखी जा सकती है। पंडुकेश्वर से थोड़ा आगे चलकर हनुमान चट्टी के पास, इन्द्र के खजानची "कुबेर" से धन लेकर, इन्होंने फिर अन्तिम यज्ञ किया। इस जंगल में आज भी कहीं-कहीं जमीन के नीचे से कोयले निकल आते हैं। फिर ये पाचों पांडव द्रौपदी सहित आगे चल पड़े। पहले द्रौपदी ने कंचन-गंगा पर शरीर त्याग किया। फिर बद्रीनाथ से आगे चलकर चारों पांडवों ने एक-एक कर बर्फ में शरीर त्याग दिया। महाभारत की कथा अनुसार, युधिष्ठिर ने जो पांडवों में सब से बड़े थे, अपने कुत्ते सहित स्वर्गारोहण किया। बद्रीनाथ से चौदह मील आगे जाकर, वह एक 13000 फुट ऊंची चोटी पर चढ़ गया, जहां पर सूर्यकुण्ड नामक सरोवर भी है। उसके बाद उसका कुछ पता नहीं चला। इस पहाड़ पर जाने के रास्ते को आज तक "स्वर्गारोहिणी" कहते हैं।

महाभारत के पहले पर्व अध्याय 119 के अनुसार, पांडवराज ने उत्तराखंड आकर श्री हेमकुण्ट सप्तश्रृंग पर्वत की जड़ पर तप किया, जहां पर अब तक उसकी तपशिला उपस्थित है। यह स्थान भिऊंडार तथा घागरिया के मध्य में स्थित है। इस स्थान पर कन्दमूल बहुत पैदा होता है, जिसका राजा आहार करता था। यह आम धारणा है कि ऋषि-मुनि उसकी रक्षा करते थे। उसके नाम पर एक मन्दिर पंडुकेश्वर, चलते रास्ते पर चिन्ह मात्र बनाया गया, ताकि यात्री आसानी से पहुंच जाएं। वैसे पंडुकेश्वर सप्तश्रृंग पर्वत पर नहीं, अपितु अलकनंदा के दूसरी ओर एक दूसरे नाम के पर्वत पर है। इस जगह कन्दमूल भी पैदा नहीं होते।

श्री हेमकुण्ट से चार मील (काकुड़ान) की दूरी पर काकभुषुण्ड नामी पर्वत है, यहां पर काकभुषुण्ड आज भी निवास करते हैं। यह अमर हो चुके माने जाते हैं। पहाड़ निवासियों में

इस सम्बन्ध में कई किंवदन्तियां प्रचलित हैं। इस पर्वत की ऊंचाई श्री हेमकुण्ट से कुछ अधिक है। इस पर्वत पर भी एक सरोवर है जिसकी लम्बाई अधिक तथा चौड़ाई कम है। रास्ता बहुत कठिन होने के कारण कोई-कोई पहाड़ी यात्री ही यहां जाता है। आधे रास्ते जाकर, रात किसी बकरियां चराने वाले की झोंपड़ी में गुजारनी पड़ती है। इस पर्वत पर कन्दमूल बहुत उत्पन्न होते हैं, जिनको खाने के लिए रीछ प्रायः यहां आ जाते हैं।

सुमेर पर्वत को जाते हुए, श्री गुरु नानक देव जी ने काकभषुन्ड जी को यहां दर्शन दिए थे। यहीं इन्द्रलोक के देवताओं ने आकर गुरु महाराज की पूजा की थी। काकभषुण्ड पर्वत से गोविदघाट के पश्चिम की ओर के पहाड़ की चोटी से होते हुए गुरु साहिब सुमेर पर्वत को गए थे।

ऐसे उत्तराखंड की स्थूल धरती को देवलोक का स्पर्श एक अदभुत, मनोहर सुन्दरता प्रदान कर रहा है जैसे कि किसी उत्तम आत्मा की झलक, स्थूल शरीर पर पड़ कर एक अनोखा रंग चढ़ाती है।

इस सारे परिक्षेप्य (सैटिंग) में श्री हेमकुण्ट पर्वत की विशेषता अति प्रकाशमान है, जिस प्रकार सोने के आभूषणों में जड़त एक कीमती नग सुशोभित होता है। इसका कारण, इस पर्वत पर एक अनोखे महर्षि का बहुत समय तक तप करना है, जो अन्त में अकाल पुरुष में लीन हो गया। इस महर्षि का नाम "दुष्टदमन" था।

दुष्ट-दमन कौन था ?

पौराणिक कथाओं में इसका वर्णन इस प्रकार है :—

हमेशा से ही देवताओं तथा दैत्यों में समय समय पर युद्ध होता आया है। समयनुसार (या आवश्यकतानुसार) अष्ट-भुजी (दुर्गा) इन युद्धों में देवताओं की सहायता करके उन्हें विजय दिलवाती रही। एक समय ऐसा आया कि दैत्य बहुत प्रबल हो गये अतः बहुत समय तक युद्ध करते रहे तथा लाखों दैत्यों का वध करने के पश्चात् भी देवी उन्हें नाश करने में सफल न हो सकी। रक्त बीज दैत्य का जख्मी होकर जब खून धरती पर गिरता था तो उस से अनेक दैत्य उत्पन्न हो जाते थे। आखिर थकित होकर देवी युद्ध से अर्न्तध्यान हो गई। लाचार होकर देवतागण ब्रह्मा जी के पास पहुंचे, जिन्होंने इनको समुंध ऋषि से सहायता प्राप्त करने हेतु उनके पास समुंध-पर्वत पर जाने की सलाह दी (इस समुंध ऋषि के नाम पर पर्वत का नाम आज तक "समुंध पर्वत" है।)

परेशानी से व्याकुल हुए देवता इस ऋषि के पास पहुंचे तथा अपनी विपदा का वर्णन किया। ऋषि ने कहा कि मैं इस समय तप कर रहा हूं इस लिए शस्त्र ग्रहण नहीं कर सकता, परन्तु आप जो आये हैं, मैं आप को निराश नहीं करना चाहता अतः आपकी सहायता के लिए एक "शक्ति" देता हूं। यह कह कर ऋषि ने अपने तेज के प्रताप द्वारा प्रमात्मा की आराधना की। उस समय एक प्रकाश हुआ, जिसमें से एक महाबली तेजस्वी स्वरूप प्रकट

हुआ, जिस को हम एक शक्ति का नाम देते हैं। ऋषि ने इस शक्ति को देवताओं की सहायता करने के लिये तथा दैत्यों से युद्ध करने हेतु भेजा। देवतागण बहुत प्रसन्न हुए तथा इस शक्ति को साथ लेकर रण-भूमि में पहुचे। शक्ति ने बल सहित रक्त बीज दैत्य को ललकार कर उस का नाश किया। बाद में दैत्यों के साथ भयानक युद्ध करके उनको मार भगाया। जो भाग गए केवल वे ही बचे। इस प्रकार देवताओं को विजय दिलवाई। इस शक्ति का नाम दुष्ट-दमन हुआ।

इस युद्ध के पश्चात् दुष्ट-दमन को भगवान की आज्ञा हुई कि श्री हेमकुण्ट सप्तशृंग पर्वत पर जा कर तप-साधन करो। इसके बाद का हाल दशमेश पिता (श्री गुरु गोबिन्द सिंह जी) ने स्वयं ही संक्षिप्त रूप से "विचित्र-नाटक" में वर्णित किया है। जो जानकारी का इच्छुक हर कोई व्यक्ति पढ़ सकता है कि किस प्रकार बहुत समय तक तप करने के बाद वे प्रमात्मा के साथ एक रूप हो गये तथा उनको मर्त्य-लोक में जाकर "वाहिगुरु का पथ" चलाने तथा लोगों को धर्म के मार्ग पर लाने, कुबुध करने से रोकने तथा दुष्टों का नाश करने की आज्ञा हुई।

यह गलत फहमी ना रह जाये कि दुष्ट-दमन कोई पांच तत्वों से बना अस्तित्व था। पंच भौतिक शरीर-धारी बारह महीने बर्फ में नहीं रह सकता, जहां कि 40—50 फुट से अधिक बर्फ पड़ती है। अतः न ही सूक्ष्म शरीर वाले दैत्यों के साथ, स्थूल शरीर द्वारा युद्ध किया जा सकता है। उस समय आप का स्वरुप "सूक्ष्म" था।

श्री हेमकुण्ट की खोज

सच पूछिए तो श्री हेमकुण्ट की "खोज" वाली बात विशेषता नहीं रखती, जब कि गुरु जी ने हेमकुण्ट-सप्त शृंग तथा पाण्डव-राज के योग साधन की निशानियां बता कर स्वयं ही अपने तप-स्थान का ठिकाना स्पष्ट कर दिया है। जो सज्जन भी पांडुकेश्वर नगरी को जानता है, वह वहां के निवासियों से उपरोक्त निशानियों का पता कर सकता है, जो देश भर में अन्य स्थान पर इकट्ठी नहीं मिलती। कठिनाई केवल उस दूरस्थ स्थान तक पहुंचने की थी। यदि आधुनिक समय को अधिक सूक्ष्म-दृष्टि द्वारा देखा जाये तो इस खोज का श्रेय व्यक्ति विशेष को नहीं दिया जा सकता। यह एक Collective Thinking (सामूहिक उदम या विचार) का परिणाम है।

यह बात भी कही जा सकती है कि श्री दशमेश जी के अपने जन्म से सैकड़ों वर्ष पहले हीं श्री शंकराचार्य ने स्पष्ट किया कि इस स्थान पर कोई अद्भुत एवं बहुत श्रेष्ठ महिष तप कर रहे हैं।

शंकराचार्य, एक दक्षिण निवासी ब्राह्मण, बहुत विद्वान तथा अभ्यासी थे, जिन्हें हिन्दू भाई शिव जी का अवतार मानते हैं। अपने विद्वता-पूर्ण तर्कों द्वारा बुद्ध मत को देश से उखाड़ कर ये उत्तराखण्ड पहुंचे। बद्रीनाथ के मंदिर की स्थापना की तथा पांडुकेश्वर में एक अन्य मदिर राजा पांडू की याद में बनाया। यहां आ कर इन्हें दुष्ट-दमन के श्री हेमकुण्ट पर तप-साधन का

अनुभव हुआ अतः यह स्थान पूजा योग्य समझ कर, यहां आ कर इस जगह एक मूर्ति स्थापित की। उस समय से ही पहाड़ निवासी लोगों ने इस स्थान की मानता हेतू यात्राएें आरम्भ कीं। समय के अन्धेरे में यह लोग भूल गए कि वे वास्तव में दुष्ट-दमन की पूजा नहीं कर रहे हैं। जिस मूर्ति की शंकराचार्य जी ने स्थापना की थी वह तो खो गई। उसके बाद सेंकड़ों मूर्तियां चोरी होती रहीं तथा उनके स्थान पर नई ला कर यहां रख दी जाती रहीं। आज के पहाड़ निवासी ठीक नहीं कह सकते कि यहां किस ने साधना की। धर्मान्धता के कारण कभी लक्षमण जी तथा कभी शिव जी का नाम इस बारे में लेते हैं। पर लक्षमण जी ने कभी तप नहीं किया, वह अपने बड़े भ्राता को कभी छोड़ नहीं सकते थे। शिवजी आज भी कैलाश पर मौजूद हैं वह कैलाश को नहीं छोड़ सकते।

पुरातन समय के सिख युद्धों में लगे रहे। देश के गुरुद्वारे भी संभालने मुश्किल हो रहे थे। जब देश में कुछ शांति हुई तो संस्कृत के विद्वान सिख, जो हिन्दू तीर्थों की यात्रा करते रहते थे, बद्रीनाथ भी पहुंचे। पांडुकेश्वर पहुंच कर गुरु जी के द्वारा "विचित्र नाटक" में वर्णित तथ्यों की याद आती, श्री हेमकुण्ट की स्थिति का अनुमान लगाते परन्तु यहां पहुंचना कठिन था। पंडित तारा सिंह नरोत्तम भी पांडुकेश्वर गये। यह चूंकि लेखक भी थे, इस लिये उन्होंने अपने लेख में इस स्थान का वर्णन किया जिस कारण सिखों में इस सम्बन्धी चर्चा होने लगी।

मेरी जानकारी के अनुसार श्री हेमकुण्ट पहुंचने वाला सबसे पहले सिख, पटियाला राज घराने के, संत अतर सिंह जी से अर्शीवाद प्राप्त एक संत थे, जो सन 1920 में यहां आ पहुचे। उस समय सर्दियों का मौसम आरम्भ हो चुका था। जोशीमठ के अधिकारियों तथा पुलिस ने संत जी को आगे जाने से रोका

परन्तु वे नहीं माने। उनके पास दो सन्दूक थे, एक में पुस्तकें तथा दूसरे में रेशमी वस्त्र थे जो कि एक कुली संत जी के साथ जा कर हेमकुण्ट पर छोड़ आया।

दैवयोग से पहली रात ही 9-10 फुट बर्फ पड़ गई। बर्फ के ढल जाने पर उनकी खोज में जब पुलिस श्री हेमकुण्ट पहुंची तो दोनों सन्दूक वियोगी दशा में वहां पड़े मिले पर संत जी का शरीर नहीं मिला (प्रथा है कि यहां के निवासी, यहां कोई मृतक शरीर नहीं रहने देते)।

बाद में सन् 1934 में, टीहरी गढ़वाल के संत सोहन सिंह जी श्री हेमकुण्ट आये। डा० भाई साहिब वीर सिंह जी की प्रेरणा तथा आर्थिक सहायता द्वारा, इस स्थान पर गुरुद्वारा स्थापित किया।

जिस स्थान पर गुरुद्वारा बनाया गया, वहां पर एक शिला पड़ी हुई थी। जब यह प्रचार होने लगा कि यह दुष्ट-दमन जी की तप शिला है, तो कुछ विरोधी तत्वों ने इस शिला को उठा कर सरोवर में फैंक दिया। सरोवर के भीतर दूर तक जाना सम्भव न था। यह शिला आज भी मंदिर के लगभग पिछली ओर सरोवर के Ebb (पानी के उतार) समय किनारे से 4-5 फुट की दूरी पर पड़ी दिखाई देती है।

दुष्ट-दमन जी की एक तप शिला, सामने दिखाई दे रहे, काले रंग के पर्वत की 18 हज़ार फुट ऊंची चोटी पर भी बताई जाती है।

पर्वत निवासियों की यात्रा

जैसा पहले कहा जा चुका है, पहाड़ी सज्जन बहुत पहले से ही श्री हेमकुण्ट की यात्रा करते आ रहे हैं। वे इस पर्वत को लोकपाल भी कहते हैं। पहाड़ के लोगों के अतिरिक्त अन्य हिन्दू, साधू संन्यासी तथा पर्यटक भी यहां दर्शनों के लिए आते रहते हैं।

यात्रानुकूल चार महीनों में पहाड़ी-प्रेमियों के इस स्थान पर तीन मेले लगते हैं। भाद्रपद की संक्रांति, जन्माष्टमी तथा नन्दाष्टमी पर लोग भारी संख्या में इकट्ठे हो कर आते हैं। समय समय पर ये तीनों मेले लेखक ने देखे हैं। इन तीनों मेलों में तीन भिन्न भिन्न दिशाओं के पहाड़ी सज्जन इकट्ठे हो कर आते हैं। तीन चार घण्टों के भीतर ही प्रशाद पूजा करके वापिस चले जाते हैं।

ये लोग इस स्थान को बद्रीनाथ से अधिक महत्व देते हैं तथा इसका सम्मान रखते हैं। समय के परिवर्तन तथा देखा-देखी, अब चाहे कुछ अन्तर आ गया है। नहीं तो ये लोग इस पर्वत पर जूते या चमड़े की अन्य कोई वस्तु ऊपर नहीं लाते थे। जेब में रखा चमड़े का बटुआ तक भी नीचे घाघरीया रख कर आते थे। ऊपर आ कर शौच-लघुशका तथा खान पान को ठीक नहीं समझते थे, नंगे पांव यात्रा करते थे।

देश भर में यही एक स्थान है जहां कि हिन्दू भाई हलवे का प्रशाद अर्पण करते हैं यद्यपि अब यह लोग घी की मात्रा बराबर से कम डालते हैं।

प्राचीन समय से ही इनका विश्वास है कि इस स्थान पर की गई प्रार्थना (मनौती) द्वारा पुत्र-कामना पूरी होती है। इन लोगों में निराशा का कोई उदाहरण लेखक को नहीं मिला।

पहाड़ के लोगों का एक अन्य विश्वास है कि इनके देवतागण श्री हेमकुण्ट पर रहते हैं, तथा प्रतिदिन सवेरे दो बजे सरोवर में स्नान करते हैं। तथा कोई मनुष्य अकेला भजन पाठ आदि के लिए यहां आकर रह नहीं सकता। लेखक को कई सज्जन ऐसे मिले, जिन्होंने ऊपर रहने का प्रयत्न किया, पर पहली रात को ही उनको भय दिया गया अतः वे रातो-रात ही नीचे भाग आए।

लेखक का अकेले ही काफी समय ऊपर रहना उनके लिए एक नयी तथा आश्चर्यजनक बात थी इस लिये जब लेखक श्री हेमकुण्ट पर रहता तो कई पहाड़ी सज्जन तथा महिलायें, सुच्चा प्रसाद लेखक के सामने रख कर माथा टेक जाते थे, विशेषकर मेलों के अवसर पर, जबकि दूर-दूर से आने वाले लोग नाना प्रकार के उपहार भी लेकर आते थे, जिनका एक बड़ा ढेर लग जाना था। ये सब कुछ उंन्हें ही बांट दिया जाता था।

लेखक अपनी तुच्छता तथा सतगुरु की महानता को समझता था, पर उनके प्रेम तथा सत्कार को देख कर चुप रहता था ताकि उनकी धर्मांधता घटे।

पहाड़ी मेलों का विस्तार सहित वर्णन, पुस्तक का विषय न होने के कारण नहीं किया गया।

श्री हेमकुण्ट विषयासक्तों के लिए

कई पर्यटक इस पर्वत की नैसर्गिक सुंदरता का दृश्य ही देखने आते हैं। घाटी चढ़ कर श्री हेमकुण्ट के मैदान के किनारे पर पहुंचते ही उनके मुंह से "वाह-वाह" का शब्द स्वतः निकल जाता है। उन्हें एक प्रकार की शांति प्रतीत होती है तथा मन ऊंचे मण्डलों के सम्पर्क की मस्ती प्रतीत करता है। यहां की अनोखी झांकी देखता हुआ मन कभी भी तृप्त नहीं होता।

दो मील घेरे वाला सरोवर ही ले लो। कोई इसके किनारे पर सारा दिन ही बैठा रहे उसका उठने को चित्त ही नहीं करता। इस का दृश्य तथा जल के नजारे प्रति-पल बदलते रहते हैं, जबकि ऊपर से गुज़र रहे बादल, धुंद, मन्द-मन्द बहती हवा, प्रकाश का घटना-बढ़ना, आस-पास से जल में पड़ रहे प्रतिबिंब तथा सूर्य की किरणों का पश्चिम की ओर से पूर्व की ओर नाच, इसके जल के ऊपर भिन्न-भिन्न प्रकार की किलोलें करते रहते हैं।

अभी जल शांत है तथा सात शिखरों की परछाईयां जल में दिखाई दे रही हैं। क्षण भर में मन्द गति से चलने वाली हवा द्वारा जल पर बारीक लहरें चल पड़ी हैं। जल का रंग कभी नीला, कभी हरा तथा कभी सफेद हो जाता है। जब ढलते सूर्य की किरणें लहरों से भरे जल के ऊपर से गुजरती हैं तब सारा सरोवर ही नेत्रों को चकाचौंध कर देने वाली चमकती-चांदी ही छा गई प्रतीत होता है। जब कभी भी इन्द्र-धनुष उभरता है, तो हमेशा सरोवर के एक छोर से ठीक दूसरे छोर तक इस तरह स्थित होता

है जैसे कि एक डाट लगी होती है।

सरोवर के पिछवाड़े स्थित ऊंचे-सीधे काले रंग के पर्वत से हर समय प्रपात (आवशार) चलते रहते हैं। सरोवर के तीन ओर सात चोटियां कभी हरी-भरी तथा कभी बर्फ से ढकी हुई चौथी ओर बारह महीनें बर्फ से ढका रहने वाला पर्वत इस सरोवर की सुदरता को और भी चार चांद लगा रहे हैं।

सर्दी जब अपने पूरे यौवन पर आती है तब इस 15,200 फुट ऊंचाई वाले पर्वत पर जल की वर्षा नहीं होती, केवल कभी कम अत: कभी अधिक बर्फ ही पड़ती है। कई बार तो वर्फ इतनी पड़ती है मानो बादल ही नीचे आ कर टिक गया है। अनुमान है कि चालीस फूट से अधिक बर्फ पड़ जाती है। गुरुद्वारा निशान साहिब अत: सरोवर भी वर्फ द्वारा ढक जाते है। बर्फ जम कर पत्थर जैसी सख्त हो जाती है। इसके नीचे एक डाट जैसी बन जाती है, इसी कारण गुरुद्वारे पर बोझ नहीं पड़ता, तथा अन्दर से शुष्क रहता है। इस ऊंचाई पर धूप का बहुत प्रभाव बर्फ पर नहीं पड़ता जो विशेष करके बरसात की वर्षा द्वारा ही ढलती है। सरोवर का जल बाहर निकल कर "हेम गंगा" के नाम से पुकारा जाता है। यह जल सारा साल ही चलता रहता है, क्योंकि इसमें प्रपात गिरते रहते हैं तथा सरोवर के नीचे भी जल का स्रोत है।

बर्फ ढलने के बाद जब वर्षा ऋतु जोरों पर होती है, तो बादल नीचे होने करके धुंद बहुत रहती है। एक बार लेखक ने जुलाई में पंद्रह दिन तक लगातार सूर्य नहीं देखा। कई बार धुंद इतनी घनी तथा काली हो जाती थी कि कुछ भी दिखाई न पड़ता था तथा प्रतीत होता था कि घनेरी संध्या छा गई है। ऐसे मौसम में वस्त्र सूखते नहीं थे तथा रोज़ कच्छा गीला ही पहनना पड़ता था।

जैसे जैसे बरसात की वर्षा घटती जाती है, बादल ऊंचाई की ओर जाने लगते हैं। परिणाम-स्वरुप, धुंद घटने लगती है और धूप अधिक समय तक निकलती है पर मौसम में ठंडक बढ़ने लगती है।

अगर वर्षा लगातार चार-पांच दिन पड़ने से तापमान घट जाये तो थोड़ी बहुत बर्फ पड़ जाती है, जो शीघ्र ही ढल जाती है। परन्तु यदि रात निखरी हुई हो तो इतना कोहरा पड़ता है जैसे कि शीशे की एक मोटी प्लेट धरती पर बिछी हुई हो। जून से अक्तूबर तक यहां का तापमान (F.H.) अधिक से अधिक 40 से 49 तक तथा कम से कम 30 से 42 डिगरी तक देखा गया है। 32 डिगरी पर बर्फ पड़ जाती है।

इस पर्वत को नाना प्रकार की कीमती बूटियां तथा रंग बिरंगे सुन्दर फूल सुशोभित करते हैं। खुश्की का ब्रह्म-कंवल भी यहां उगता है। बहुत सारी सुगंधित बूटियों से धूप बनती है। फर्श पर कुशा घास पैदा होता है। यात्री के लिये दुःखदायी कांटों का नामो-निशान नहीं मिलता। जब धरती शुष्क होती है तब इस पर बिछी हुई नर्म घास तथा बूटियों से सम्मिलित मोटाई पर चलो तो पैरों को एक लचक प्रतीत होती है। मानो कि कीमती गलीचे पर चल रहे हैं। बूटियों के हरे पत्ते सूख कर एक दोषी की तरह पीले नहीं पड़ते, बल्कि प्रमात्मा के कृपा-पात्र की भांति रंग में लाल हो जाते हैं। यहां मंदहोश तथा बेहोश कर देने वाली सुगंधी देने वाले पुष्प नहीं होते। किसी-किसी यात्री को जो घुमेरी प्रतीत होती है, उसका कारण इतनी ऊंचाई पर पतली हवा का होना है।

रात का पूरा अंधेरा छा जाने से पहले, जबकि यहां के एकांत में घनेरी संध्या छा जाती है, तो सारा दृश्य तथा वातावरण किसी और प्रकार का हो जाता है। एक तरह का सन्नाटा सा

छा जाता है। असली दृश्य किसी अन्य रूप में नजर आने लगते हैं। ऐसे समय का एकांत किसी के लिए दिल हिला देने वाला भयानक समय होता है, परन्तु डर के अभाव में इस समय आनन्द और बढ़ जाता है। एक मस्ती जैसी प्रतीत होती है।

रात की बात और है। उस समय दिखाई कम देता है, पर सुनता अधिक है। कई प्रकार की अवाज़ें जिनका इस ऊंचाई से सम्बन्ध है, न पहचानी जा सकने के कारण, भयानक प्रतीत होती हैं। कई बार बादलों की गर्जना तथा बिजली की कडक निचली खड्ड से आती है। बड़े-बड़े पत्थरों, पहाड़ों तथा हिमखण्डों के गिरने की आवाज़ें नज़दीक से आती हुई प्रतीत होती है।

इस पर्वत के चरणों पर घागरिया से दो मील आगे 11,000 फुट की ऊंचाई पर स्थित फूल घाटी खास वर्णन योग्य है। यहां दो मील की लम्बाई में लगभग डेढ़ दो सौ भांति के रंग बिरंगे कई शक्लों वाले फूल धरती पर बिछे हुए हैं। इनमें कुछ ऐसे हैं जो दुनिया भर में अन्य किसी स्थान पर नहीं देखे गए। ऐसा प्रतीत होता है कि श्री हेमकुण्ट के महत्तव को समझ कर, प्रकृति ने स्वयं इसके चरणों पर ये अनोखे पुष्प अर्पित किए हैं। सारी किसमों के फूल एक बार नहीं होते। बर्फ ढल जाने के बाद तथा दुबारा पड़ने तक, धरती की तासीर, हवा, पानी, वर्षा, धूप तथा नित्य बदलते मौसम के अनुसार फूलों की किस्में भी बदलती रहती हैं।

इस फूल घाटी के फूलों पर एक अंग्रेज महिला मिस जानज ने चार बृहत्ज्ञानकोष लिखे हैं। यह महिला लंदन के शाही बाग की अधीक्षका थी, जो रानीखेत के पादरी की पत्नी श्रीमति स्मिथ के साथ 1922 में भ्रमण करती हुई तपोवन वाली ओर से पहाड़ पर चढ़ कर इस घाटी पर उतरी थी। यह फूलों की चाहने वाली महिला फिर हर वर्ष यहां आती रही। अंत में यहां

हो, पैर फिसल जाने के कारण गिर पड़ी तथा शरीर त्याग दिया। इस की कब्र यहां ही बना दी गई।

श्री हेमकुण्ट की यात्रा अधिक से अधिक अक्तूबर के मध्य तक की जा सकती है। परन्तु इस समय तक ठंड कुछ अधिक हो जाती है। यात्रा आरम्भ होने का समय निश्चित नहीं। यदि सर्दियों में बर्फ कम पड़ी हो तथा वर्षा ऋतु शीघ्र आरम्भ हो जाए तो बर्फ जून के आरम्भ में ही ढल जाती है। यदि सर्दियों में बर्फ अधिक पड़ जाए वर्षा देर से आरम्भ हो तो कई बार जून के मध्य तक भी बर्फ पूरी तरह नहीं ढलती। इस सम्बन्ध में गोबिन्दघाट या ऋषिकेश गुरुद्वारे के स्थानीय प्रबंधकों से पता कर लेना उचित होगा।

श्री हेमकुण्ट साधक के लिए

जब कोई सुन्दर दृश्य देखता हूं तो स्वतः ही मुंह से "बलिहारी कुदरत वसिया" निकल जाता है। पर इस वाक्य के अंत:-भाव कुछ अधिक गहरे हैं। जब "कुदरत" के शब्द को कर्त्ता की सारी सृष्टि के साथ सम्बन्धित करते हैं तो सांसारिक-सुन्दरता या असुन्दरता वाली बात समाप्त हो जाती है। प्रकृति में इसके रचयिता के निवास के अनुभव द्वारा एक अनोखी विस्माद-जनक रंगत मन पर छा जाती है। प्रकृति कई रंगों में परिवर्तित होती हुई प्रतीत होती है। पर जब कर्त्ता का प्रकट होना, प्राकृतिक सुन्दरता में प्रतीत होता है तो मन में एक नयी प्रकार की लहर चल पड़ती है।

वे महान उच्चकोटि के व्यक्ति जो अकाल पुरुष के साथ "एक" हो चुके हैं उनमें परमात्मा की पूर्ण-ज्योति प्रकाशमान होती है। उनके शरीर में एक महान शक्ति व्यापक होती है। इस कारण उनके स्पर्श से हर वस्तु, धरती तथा वायु मण्डल में एक अटल तेजमयी लहर चल पड़ती है, जो हमेशा या सर्वकालीन स्थित रहती है। जिस प्रकार बिजली का स्पर्श लोहे में शक्ति भर कर उसे चुम्बक बना देता है।

कई श्रद्धालुओं ने देखा होगा कि जब वे अपना मस्तक किसी ऐसी सिद्ध भूमि या स्थान के साथ लगाते हैं तो बिजली के झटके की तरह एक लहर सारे शरीर में प्रवेश कर जाती है, जो मन तथा तन को शुद्ध करती है। इसी लिये ऐसे स्थान पवित्र कहलाते हैं। सिद्धि प्राप्त वस्तुओं की ऐसी ही शक्ति होती है।

एक बहुत वृद्ध सिख ने महाराजा रणजीत सिंह जी को कहा था कि इसने अपनी बहुत छोटी उमर में गुरु गोबिन्द सिंह जी के दर्शन किये थे। उसको एक बात याद है कि जब उसने गुरु महाराज के चरणों पर माथा टेका था तो उसके सारे शरीर में एक तेजमयी झरनाट छिड़ गई थी।

श्री हेमकुण्ट की प्राकृतिक सुन्दरता पर एक महान शक्ति के द्वारा परम ज्योति के स्पर्श की पुट चढ़ जाने के कारण, प्रत्येक दर्शक के मन पर यह सुन्दरता एक नया प्रभाव उत्पन्न कर देती है। जैसी जैसी किसी के मन की अवस्था होती है, उसके अनुसार मन पर प्रभाव भी विभिन्न प्रकार का होता है। इसके वातावरण में "अपनत्व" भूल जाता है, सुरती को एकाग्रता में ला कर स्वर्ग आनन्द प्राप्त होता है तथा परलोक की झलक दिखाई पड़ती है। मर्त्यलोक की चिन्तायें भूल जाती हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि मानवमन के विषय विकार इस पवित्र पर्वत की ऊंचाई पर चढ़ने में असमर्थ हैं।

लेखक ने यह अनुभव किया है कि कुछ समय श्री हेमकुण्ट में एकान्त निवास करके जब वह नीचे जाता था तो सचमुच ही यह प्रतीत होता था कि वह स्वर्गलोक से मर्त्यलोक में आ गया है। लोगों की बोल-चाल कानों को अप्रिय लगती थी तथा उनका व्यवहार-विचार मन को बिल्कुल ही नहीं भाते थे। यह दशा कई-कई दिन तक रहती थी।

पर बात चल रही है जिज्ञासु की। इस स्थान पर अनादि अकाल पुरुष ने दुष्ट-दमन जी को, जो कि बहुत समय तक तप करके उसके साथ "एक रूप" हो चुके थे, मर्त्यलोक में जा कर दशम गुरु नानक कहलवाने के लिए सादर भेजा। ऐसी पवित्र भूमि पर जब कोई सज्जन साधना के हेतु जाता है, तो यहां का प्रभाव तथा वायु-मण्डल मध्यमसुरती को भी बहुत ऊंचा पहुंचा देता है। जो भी मन की शुद्धता द्वारा इच्छा-रहित निर्लेप हो कर श्रद्धा, प्रेम, तथा चाव द्वारा यहां के एकांत में साधना करता है, मन को "सत्य" समझने तथा ग्रहण करने की ओर प्रेरित करता है, वह थोड़े समय में ही उच्च अवस्था को प्राप्त कर लेता है।

कारण स्पष्ट है। जिस का मन, शरीर को "अपना" मान लेने के कारण, माया में परिपक्व था, अब उसे अपनत्व भूलती प्रतीत होती है। जिन इन्द्रियों के रसों में वह खचित था उनसे उपराम हो जाता है। मन के भीतर लगी माया की अग्नि शांत होने लगती है। फिर सुरती हल्की तथा शुद्ध हो कर, नाम के द्वारा अपने अंदर स्थित परमात्मा की ओर वेग से दौड़ती है। जब सतगुरु कृपा करते हैं तो "सत्य" का प्रकाश हो जाता है।

हर साधना के लिए एकांत सहायक होती है। अब यात्रा में वृद्धि हो जाने के कारण पूरा एकांत प्राप्त नहीं होता। श्री हेमकुण्ट पर्वत पर इधर-उधर कुछ छोटी तथा बड़ी गुफाएं हैं। देवलोक का प्रभाव तो वहां होता है, पर विशेष स्थान का आनन्द कुछ

अलग ही है। यह हो सकता है कि दिन के समय सरोवर के आसपास कोई स्थान खोज लिया जाये। रात को तो एक प्रकार से हर जगह एकांत होता है। रात का अन्धेरा माया के अन्धेरे से प्रबल होता है।

हमारा विषय साधना के विभिन्न ढंग गिनने का नहीं। हर कोई अपना अपना रास्ता अपनाता है तथा अपने ढंग द्वारा भिन्न-भिन्न प्रकार से आनन्द मानता है। यहा रात तथा दिन के समय का वातावरण कई प्रकार से अपना प्रभाव दिखाता है तथा अनन्त प्रकार के रंग परमात्मा प्रकट करते हैं।

श्री हेमकुण्ट पर जीव-जन्तु

जैसे इस पवित्र पर्वत का प्रभाव भिन्न प्रकार का है, वैसे ही यहां के जीव-जन्तु भी निराले हैं। यहां कीड़े-मकौड़े या विषैले सांप बिच्छू इत्यादि नहीं होते। यहां पंछी सरोवर में डुबकियां लगाते हैं। यहां मकड़ियां उड़ान भरती हैं। चूहे कुशा घास खाते हैं। रंग-बिरंगी चिड़ियां सुन्दर-सुन्दर फूल तथा बूटियां खा कर निर्वाह करती हैं।

इस पर्वत पर रीछ कभी भी दिखाई नहीं दिया, पर रात के समय कभी-कभी बर्फानी शेर आ जाता है। इसका रंग बिल्कुल सफेद तथा कद लाल शेर से छोटा होता है। लम्बी लटों वाले खाडू की किसम का एक अन्य जानवर तथा कस्तूरा भी कभी-कभी दिखाई पड़ जाता है।

पंछी यहां तीन प्रकार के होते हैं। एक काले रंग के कौए के

आकार के, जो उत्तर वाले पहाड़ की ढलवान पर, एक खड जैसी जगह पर निवास करते हैं। ये यहां बारह महीने रहते हैं। सुबह के समय, ये पद्रह-बीस के झुंड में नीचे की ओर कहीं चले जाते हैं तथा संध्या समय सारे इकट्ठे ही वापिस पहुंच जाते हैं। दो तीन पंछी एक और प्रकार के, भूरे जैसे रंग के आते हैं, जो पहुंचते ही सीधा जल में जोर से डुबकी लगाते हैं तथा कुछ क्षण जल के भीतर रह कर फिर बाहर आते हैं तथा फिर वापस उड़ान भर जाते हैं। कई प्रेमियों को इनके दशमेश जी के बाज होने का संशय होता है, पर यह ठीक नहीं। सर्दियों के दिनों में यह पंछी गोबिन्द घाट के पास, अलकनंदा नदी में भी डुबकियां लगाते देखे जा सकते हैं। दो-चार रंग-बिरंगी चिड़ियां भी नीचे से आ कर फूलों तथा बूटियों को चोंचें मार जाती हैं, जब मौसम अच्छा हो।

मक्खी लाल रंग की, पर थोड़ी संख्या में होती है। एक मकड़ी कमरे के भीतर जाला तानती है। दूसरी प्रकार की बाहर छज्जों के नीचे जाला बनाती है, जो उड़ भी जाती है। इसके जाले पर जल असर नहीं करता।

भूरे रंग के, छोटी पूंछ वाले चूहे यहां बहुत संख्या में हैं। ये पूरे वर्ष ही यहां रहते हैं। जमीन के नीचे (भूमि के गर्भ में) दूर दूर तक लम्बी खुडे (खोडरे) बनाई हुई हैं। साफ मौसम में घास तथा बूटियां कुतरते रहते हैं तथा साथ ही साथ कुशा घास भी अपनी खोडरों में इकट्ठा करते रहते हैं, जिस पर बर्फ के दिनों में अन्दर बैठे निर्वाह करते रहते हैं। शुरू में ये भुने हुए चने न खाते थे, सूंघ कर छोड़ जाते थे। बाद में लेखक को रोज खाते देख कर इन्होंने भी दानों को मुंह मारना आरम्भ किया अत: इतने स्वादिष्ट लगे कि जिस दिन इनको दाने न दें, ये गुस्से में आ कर रात को लेखक का कम्बल कुतर जाते थे। मेरा इनको

पुण्य करना भला फलदायी न हुआ।

दो तीन प्रकार के जन्तु जो सरोवर के जल में देखे गए हैं उनके बारे में बताना आवश्यक है। पहले प्रकार के जन्तु सरोवर के किनारे पर तथा जहां सरोवर का जल हेम गंगा बनता है वहां पत्थरों के ऊपर पड़े हुए दिखाई देते हैं। ये छोटे-छोटे बेढंगे पत्थर ही प्रतीत होते हैं पर जब कोई इन्हें छेड़े तो छोटा सा मुंह बाहर निकाल कर चल पड़ते हैं। दूसरी प्रकार के जन्तु बहुत बारीक, लाल रंग के हैं। तीसरे, जिस स्थान पर बर्तन साफ किए जाते तथा अन्न भी जल में गिरता है, वहां कभी-कभी देखे जाते हैं। जिस जगह सरोवर का जल तेज़ बहाव द्वारा बाहर जाने लगता है, उस बहती धारा में ये नहीं देखे गए। जल कपड़े द्वारा छानने पर जन्तुओं से साफ हो जाता है।

श्री हेमकुण्ट की मेरी पहली यात्रा

हवलदार मोदन सिंह जो मंसूरी स्थित सर्वे विभाग में कर्मचारी थे, देख-भाल हेतु प्रत्येक वर्ष श्री हेमकुण्ट पर जाते थे। कोई न कोई यात्रा का इच्छुक भी साथ चल पड़ता था। अगस्त 1946 में जब मैं मसूरी गया तो हवलदार जी से मेरा प्रथम बार परिचय हुआ। वे उस समय श्री हेमकुण्ट जाने की तैयारी कर रहे थे। मैं भी साथ जाने के लिए तैयार हो गया। उनके एक सम्बन्धी तथा लुधियाना मण्डल के एक संत भी साथ हो लिए। हम चारों कोटद्वार तथा पौड़ी होते हुए रुद्र-प्रयाग पहुंच गए। उन दिनों में बसें अभी रुद्र प्रयाग तक ही चलती थीं, आगे सारा

रास्ता पैदल ही तय करना पड़ता था। मैं सोच ही रहा था कि अब कोई कुली भाड़े पर किया जाएगा कि मेरे तीनों साथियों ने अपना सामान रस्सियों द्वारा कस कर पीठ पर लाद लिया। मेरे लिए यह एक नयी बात थी, पर विचार किया कि जीवन अन्ततः नए प्रयोगों का संग्रह ही तो है, फालतू सामान एक दुकानदार के पास रख दिया। दो कम्बल, दरी, कुछ वस्त्र तथा और आवश्यक (रजाई तथा बिछौना लेखक ने बचपन से ही प्रयोग में लाना छोड़ रखा है।) लपेट कर रस्सियों द्वारा बांध कर मैंने भी पीठ पर बांध लिया तथा अपनी इस नयी प्रकार की योजना के जोश में, साथियों के पीछे हो लिया। हम पंद्रह बीस मील नित्य यात्रा करके पड़ाव करते हुए घागरिया पहुंच गए।

रास्ते में चलते हुए यात्रा के इस बीच मैंने सुझाव रखा कि इस बार तप स्थान पर तीन दिन ठहर कर अखंड पाठ किया जाए। यह बात सब ने स्वीकार कर ली। गुरुद्वारा के भीतर तेल जलाना वर्जित है, अतः जोत के लिये घी तथा अन्य आवश्यक सामान साथ ले लिया। उस समय में अभी श्री हेमकुण्ट पर जाने हेतु कोई सड़क या रास्ता बना हुआ नहीं था। अनुमान अनुसार जाना पड़ता था (घागरिया से श्री हेमकुण्ट तक, चार मील की सड़क, बाद में 1953-54 में चीफ खालसा दीवान ने, अपने खर्चे द्वारा बनवाई थी)। ऊपर छोड़ आने के लिए चौकीदार साथ ले लिया अतः मार्ग में गिरते-पड़ते श्री हेमकुण्ट के द्वार पर जा पहुंचे। वहां अखण्ड-पाठ आरम्भ किया। पाठ करने वाले मैं तथा सत जी ही थे। हमने दो-दो घंटे की बारी नियुक्त की, तीसरे सज्जन ने चाय-पानी की सेवा की तथा हवलदार जी ने, रात्रि को घी की ज्योति प्रज्वलित रखने की कठिन सेवा सम्भाली। इस ऊंचाई की रात की ठंड में ज्योति जलते जलते ही घी जम जाता था, इस कारण दीये के नीचे हर समय पंखा करते हुए जलते

कोयले रखने पड़े। रात भर की यह कठिन सेवा, हवलदार जी ने दृढ़ता तथा प्रेम-पूर्वक पूर्ण की। हमें नींद, भूख, थकावट का कुछ पता ही नहीं लगा। पाठ के द्वारा सब को बहुत ही शांति तथा ग्रानन्द प्रतीत हुग्रा। निर्विघ्न समाप्ति पर हम नीचे उत्तर ग्राए। श्री हेमकुण्ट पर यह सब से पहला ग्रखंड पाठ था।

हवलदार जी ने चौकीदार को ग्रावश्यक बातें समझाई, तथा हम चारों उसी प्रकार पड़ाव करते वापस मसूरी पहुंच गए।

गोबिन्द घाट की यात्रा

सन 1955 के ग्रारम्भ की बात है कि डा० भाई वीर सिंह जी के साथ बात-चीत करते हुए मैंने ग्रपना विचार, कुछ समय के लिए, किसी एकांत स्थान पर जा कर रहने का प्रकट किया। भाई साहिब ने सलाह दी की मैं गोबिन्द घाट चला जाऊं, जहां एकांत भी है तथा हवलदार मोदन सिंह जी को किसी साथी की ग्रावश्यकता भी है। श्री हेमकुण्ट का सामीप्य होने के कारण मुझे यह बात पसन्द ग्राई। भाई साहिब ने बाद में पत्रों द्वारा भी ग्रपने उपरोक्त विचार की पुष्टि की, तथा मैंने गोबिन्द घाट जाने की तैयारी कर ली।

सारा ज़रूरी सामान ले जाने से पहले मैंने सोचा कि एक बार गोबिन्द घाट जा कर, पहले वहां का वातावरण देख ग्राऊं तथा यह सारा सफर बाईसिकल पर ही करू। जब कभी मन को ग्राराम देने तथा शरीर को स्फूर्ति देने की ग्रावश्यकता प्रतीत होती तो पहले भी मैं कई बार ग्रलग ग्रलग ग्रोर के पहाड़ों में

सैंकड़ों मीलों का, लम्बा सफर साईकल पर ही कर आता था। चढ़ाई पर साईकल खुद खींचता था तथा उतराई तथा साफ रास्ते पर सवारी करता था। अतः बिस्तरा तथा ज़रूरी सामान जो कुल 20-25 सेर होगा साईकिल पर रख लिया तथा रोपड़ से ऋषिकेश होता हुआ बद्रीनाथ वाली सड़क पर पहुंच गया।

जब कर्ण प्रयाग से चलने लगा तो सूर्य पश्चिम की उतराई से दूर तक जा चुका था। ऐसे सफर में मेरा स्वभाव कुछ हठी तथा साहसिक हो जाता है। कर्णप्रयाग के डाक बंगले के आराम को भूल कर बिना कुछ सोचे समझे आगे चल पड़ा।

अभी 12-13 मील ही आगे गया था कि संध्या हो गई। आकाश पर काले मेघों की घटा छा गई, ठंडी, ठंडी बयार (हवा) चल रही थी तथा अंधेरा हर क्षण बढ़ता जा रहा था। इस समय मैं एक पहाड़ की नुकड़ मुड़ कर, सड़क की उतराई पर, लगभग 13 मील की रफतार पर एक नदी के पुल की ओर जा रहा था, जो सड़क की बाईं ओर दूर बहती हुई चमक रही थी। नदी की ओर सीधी ढलान थी तथा सड़क की दाहिनी ओर, सीधी खड़ी चट्टान।

पहाड़ के मोड़ से थोड़ी दूर ही गया हूंगा जबकि पीछे मुड़ कर देखा कि एक सोलह साल की लड़की, पहाड़ी लिबास में, साईकल के पीछे दौड़ती आ रही थी। मैंने इधर कुछ ध्यान न दिया। दो तीन फर्लांग आगे चल कर फिर पीछे की ओर देखा, वह अब भी साईकल के पीछे दौड़ रही थी। मैं हैरान तो हुआ कि यह लड़की इतना तेज़ कैसे दौड़ सकती है, पर मेरा ध्यान बढ़ रहे अंधेरे तथा वर्षा की सम्भावना को ओर था। थोड़ी दूर और गया कि धीमी-धीमी वर्षा की फुहार शुरू हो गई तथा बरसाती ऊपर लेने के लिए ठहरना पड़ा। वह लड़की जो अभी भी पीछे आ रही थी, अब साईकल के पीछे खड़ी हो गई। मैं अपने ऊपर बरसाती

ले ही रहा था कि उसने मेरे साईकल के पीछे रखे हुए किट पर एक अनोखे प्यार से धीरे-धीरे हाथ फेरा, जिस में एक माता की वात्सल्यता थी। इस प्रकार उसने मुझे समझाया कि किट के ऊपर भी मैं बरसाती का एक पल्ला डाल दूं। इसके बाद वह साईकल के आगे खड़ी हो गई। मुझ को ठहरना पड़ा तथा स्वाभाविक ही उस से पंजाबी में पूछा कि "तू कहा रहती है?" वह बोली कुछ नहीं, मेरी बात ठीक समझ गई तथा ऊपर की ओर इंगित किया, जिसे मैंने पहाड़ी की चोटी पर कोई गांव समझा। मैंने फिर पूछा "तू कहां से आई है?" उसने अपने पिछली ओर इगित किया, जिधर श्री हेमकुण्ट था। इस प्रश्न पर कि तू अब किधर जा रही है, उसने अपने हाथ द्वारा पहले अपनी ओर इशारा किया, फिर मेरी ओर। इस प्रकार उसने बताया कि वह मेरी ओर आई है। दो-तीन अन्य प्रश्न पंजाबी में किए, उनका उत्तर भी उसने इशारों में ही दिया। फिर वह साईकल के आगे से एक किनारे हो कर नदी की ओर वाले भाग, सड़क के किनारे बन्नी पर बैठ गई। मुझे कुछ जल्दी थी, अन्धेरा तथा वर्षा बढ़ रही थी। दूसरे एक कन्या के साथ, ऐसे एकांत में व्यर्थ बात-चीत करने में संकोच कर रहा था। कुछ ऐसे भावों में ग्रसित मैंने आगे चलने के लिए साईकल पर चढ़ने के समय एक बात और पूछी कि "तेरा नाम क्या है?" उसने उत्तर दिया "रुद्र सिंह।" मैंने कहा तू तो लड़की है, तेरे नाम के साथ सिंह कैसे हो सकता है?" वह अपने मुंह पर पल्ला रख कर एक अनोखे अंदाज़ (ढंग) से मुस्कराई जिस में एक अवर्णनीय सुन्दरता तथा आकर्षण था। मैं भी मुस्कराया तथा साईकल पर सवार हो कर चल पड़ा। पांच-सात गज़ आगे चल कर जब पिछली ओर देखा तो वहां कोई भी न था। मैं साईकल से उतर पड़ा। सड़क खाली थी। सड़क के इधर-उधर जाना सम्भव न था। मैं सोच में पड़

गया। उस पहाड़ी वेष वाली लड़की का ठेठ पंजाबी समझना, 13 मील की गति से दौड़ना, अपने को "रुद्र सिंह" कहना भिन्न-भिन्न प्रकार के भावों से भरे इशारे तथा एक अपनत्व दिखाना, सब कुछ अनोखी बात थी, जिसका पहले निर्णय करने का विचार मेरे मन में न आया। इस से उसके असली रूप के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करने की ओर मेरा ध्यान ही ना गया।

अन्ततः मैं आगे चल पड़ा तथा विचारों की उधेड़ बुन में नदी के पुल पर पहुंच गया। पुल पार किया। इस समय रात रानी ने अपनी काली चादर धरती पर फैला दी थी, जिसके नीचे भांति-भांति के कार्य-कलाप होते हैं। संतों तथा चोरों की लगन अपनी असलियत में प्रकट हो जाती है। एक तो रात का समय, दूसरे काले बादल, हाथ को हाथ नहीं सूझता था, ऐसे अंधेरे में भी सफर करने के अवसर मिले हैं। साईकल से उतर कर नंगे-पैर चल पड़ो, पथरीली सड़क से नीचे पैर न उतरे। पर वर्षा का भय था। पुल की दाहिनी ओर कुछ मैदान जैसा दिखाई दिया उधर गया तो एक बड़ा दो मंजला भवन नज़र आया मैंने दरवाज़े पर दस्तक दी। दरवाज़ा खुला। यह एक छोटी सी दुकान थी, जो आये गए, जंगल तथा सड़क के मज़दूरों के सहारे चलती थी। अन्दर बैठे मालक ने दीया जलाया। उसके पास, उसका कोई मित्र भी बैठा था। मैंने पूछा कि "यहां रात को ठहरने का कोई प्रबन्ध हो जाएगा ?" उन्होंने आपस में कुछ गम्भीर विचार-विमर्श किया। मुझे उत्तर दिया कि "हां, ऊपर आ जाओ जगह मिल जाएगी।" मेरी साईकल तथा बाकी सारा सामान नीचे एक कमरे में रखवा दिया, तथा बिस्तर उठवा कर मुझे ऊपरी मंज़िल में नदी वाली ओर एक खाली कमरे में जगह दे दी। रात के सन्नाटे में पास बह रही नदी की "शां-शां" मानों लोरियां दे रही थी, कुछ थकावट भी थी। फर्श पर बिस्तरा बिछा कर लेटते

ही गहरी निद्रा में चला गया।

अभी रात के गयारह बजे के लगभग समय था कि अचानक मेरी आंख खुल गई तथा मैं उठ कर बैठ गया। क्या देखता हूं कि दरवाज़े पर दो व्यक्ति, आगे पीछे चुपके-चुपके, सिर झुकाए हुए, मेरी ओर धीरे-धीरे चले आ रहे हैं। अगले व्यक्ति के हाथ में टार्च थी, पिछले के हाथ में एक बड़ा छुरा था। मैंने तेज़ आवाज़ में उन्हें ललकारा तथा संघर्ष के लिए उठने लगा था कि वे दोनों घबरा कर सीधे खड़े हो गए तथा जैसे कोई अपराधी अपने कुकर्म में असफल हो कर झूठा पड़ कर सफाई देने का प्रयत्न करता है। वे बोले, "आप कोई चिन्ता न करें यहां किसी किसम का भय नहीं, हम तो देखने आए हैं कि आप को सब तरह का आराम है।" उस समय मुझे अपने जाग जाने का, शरीर की गति तथा बोलने का कुछ पता न था। ऐसा प्रतोत होता था जैसे मेरे भीतर कोई शक्ति काम कर रही है। तथा शरीर में इतना बल है कि दोनों की गर्दन मरोड़ कर नीचे फेंक सकता हू।

ये मालिक मकान तथा उसका मित्र थे। अपनी सफाई कह कर वे नीचे चले गए, पर मुझे स्पष्ट हो गया कि मेरी साईकल, सोने की घड़ी तथा माया के अनुमान ने, उनकी नीयत बदल दी है। मैंने सुना हुआ था कि बद्रीनाथ के कई पद-यात्री गुम हो जाते हैं। भेषधारी साधु तथा कई स्थानीय निवासी यात्रियों को लूट कर जान से मार कर किसी नदी में फेंक देते हैं। जो स्थान-स्थान पर बहती हैं। न मारने वाले का पता लगता है, न मारे जाने वाले का।

अब नींद भूल गई, बिस्तरा उठा कर नीचे आ गया तथा भवन के बाहर, दीवार के साथ बने हुए एक चबूतरे पर आ कर बैठ गया। साईकल तथा सामान भीतर से निकाल लिया साईकल अपने सामने रख कर सवेरा होने की प्रतीक्षा करने लगा। अब

उस "लड़की" के कौतक की समझ आई। मुझे बात याद आई कि किसी बड़ी दुर्घटना से पहले चेतावनी हो जाया करती है। पर यह चेतावनी भी नहीं अपितु साधक की श्रद्धा तथा प्रेम को बढ़ाने हेतु कृपालु सत्गुरु द्वारा इशारा होता है, कहीं ऐसा न हो कि साधक को अपने बल तथा अहं पर अहंकार हो जाए।

वे दोनों प्रेमी अपने निश्चय पर दृढ़ प्रतीत होते थे। थोड़ी देर बाद, भिन्न-भिन्न दिशाओं से हो कर ताक-झाक करते पर हर समय मुझे सावधान देख कर निराश हो कर वापिस चले जाते।

आखिर रात का पहर समाप्त होने लगा। सड़क अच्छी तरह दिखाई देने लगी। मैं अपना सामान साईकल पर रख कर वहां से चल पड़ा। खून के खेल से प्रभु जी ने रक्षा कर दी।

इन पहाड़ों में बहुत सारे व्यक्तियों ने कभी भी साईकल नहीं देखा था अतः कई मनोरजक घटनाए हुई, पर यह हमारा विषय नहीं।

दूसरे दिन मैं गोविन्द घाट पहुंच गया। वहां दो चार दिन ठहर कर हर बात का अध्ययन किया। श्री हेमकुण्ट पर जाना अभी सम्भव न था सो उसी प्रकार पड़ाव करता वापिस आ गया।

श्री हेमकुण्ट की अन्य यात्राएं

उसी साल मई के महीने सामान ले कर मैं फिर गोबिंद घाट पहुंच गया। श्री हेमकुण्ट के दर्शनों की तीव्र अभिलाषा थी। जून के शुरू में एक संत वहां पहुच गए। हम दोनों श्री हेमकुण्ट के

लिए चल पड़े। मार्ग में कहीं-कहीं थोड़ी बर्फ पड़ी हुई थी, पर श्री हेमकुण्ट पर तो अभी भी ढाई तीन फुट बर्फ बाकी थी। हमने बर्फ तोड़ कर गुरुद्वारे के दरवाज़े खोले। भीतर जा कर माथा टेका। श्री गुरु ग्रन्थ साहिब पलंग पर बिराजमान थे। कमरा भीतर से सूखा (शुष्क) था, पर चूहों ने अपनी खोडरें अन्दर तक पहुंचा रखी थीं। हम उसी दिन वापिस चल पड़े पर हृदय में सेवा हेतु अभिलाषा हुई तथा सत्गुरु के आसरे यहां दुबारा आ कर कुछ समय रहने का विचार कर लिया ताकि नित्य सेवा, सफाई तथा प्रकाश हो सके।

दिन व्यतीत होते रहे। जब श्री हेमकुण्ट पर बर्फ ढल गई तो मैंने गोबिन्द घाट से चलने का दिन निश्चित कर लिया।

श्री हेमकुण्ट पर जा कर वहां भोजन के लिए पदार्थ तैयार करना, बहुमूल्य समय की बरबादी करना प्रतीत हुआ। सो खाने के लिए कुछ भूने तथा कच्चे चने, एक डिब्बा ओवलटीन तथा शुष्क दूध तथा ज्योति के लिये घी का प्रबन्ध कर लिया।

गोबिन्द घाट से चलने वाले दिन जब मैं प्रभात के समय जागा ही था, तो स्पष्ट रूप से किसी ने कहा कि "ऊपर जायेगा तो तेरी मौत हो जाएगी।" यह आवाज़ सज्जन की नहीं था। मैंने इसकी परवाह न की। चलने से पूर्व प्रार्थना की आज्ञा ली तो "लावां" वाला शब्द था। सिख का ब्याह "लाड़ो मौत" के साथ नहीं हुआ करता, परमात्मा के साथ हो सकता है। अतः मैं प्रसन्न हुआ। उपरोक्त सामान दो तीन सूती कमीज़, पायजामे, तीन स्वैटर और बिस्तरा बांध कर कुली के हवाले किया तथा श्री हेमकुण्ट के लिए चल पड़ा। मुझ को ऊपर छोड़ जाने के लिए गुरुद्वारे का ठेकेदार तथा चौकीदार साथ हो लिए।

श्री हेमकुण्ट पहुंच कर गुरुद्वारा साहिब में ठहरना उचित न समझा, इस लिये मंदिर के सामने, पुरानी धर्मशाला में सरोवर

वाली ओर, खिड़की वाले कोने में, अपना आसन लगा लिया था। बाकी धर्मशाला की सारी छत टपकती थी। मेरा यहां अकेले रहना, मेरे साथियों के विचार में एक अनहोनी बात थी। इस लिए मेरे भविष्य को अन्धकार-मय जान कर इन्होंने उदास मन से वापस जाने के लिए मुझ से आज्ञा चाही, जैसे कोई सदैव के लिए बिछुड़ने लगता है। मैंने इन्हें ढारस बंधाया तथा मुस्करा कर कहा कि आप मर्त्यलोक को जाओ, मैं तो अब स्वर्गलोक का निवासी बन गया हूं। वे धीरे-धीरे चलते हुए, पीछे देखते हुए पर्वत से नीचे उतर कर, दृष्टि से ओझल हो गए।

अब पूरी एकांत थी। मुझ को एक प्रसिद्ध अंग्रेज़ कवि का पद्य याद आया—

"O Solitude, where are thy Charms?"

(हे एकांत, तेरा सौंदर्य कहां हैं?" मुंह से "वाह-वाह" निकला। चारों ओर देखा। सब कुछ ध्यान-पूर्वक देखा। दृष्य की सुन्दरता को नेत्रों की प्यालियों में सजोया। दुष्ट-दमन जो के तप की स्मृति हो आई। हर प्रकार के भय का मेरे भीतर अभाव था। अब मैं अपने लिए प्रति-दिन का कार्यक्रम बना कर, गुरुद्वारा चला गया। फर्श के पत्थर उठा कर, टूटे हुए शीशों द्वारा चूहों के बिल मूंद दिए। सेवा, सफाई, झाड़-पूंछ की। सोदर का पाठ करके गुरुद्वारे का ताला लगा कर परिक्रमा की, तथा अपने आसन पर आ कर, कंबल लपेट कर खुली खिड़की की ओर मुंह करके, सत्गुरु की प्रेम-स्मृति में बैठ गया। सूक्ष्म आहार तथा इस ऊंचाई की पतली हवा के कारण नींद आती प्रतीत न हुई, पर फिर भी लेट गया और आंख लग गई।

देवताओं का आना :-

रात के ठीक दो वजे थे कि अचानक मेरी आंख खुल गई तथा एक व्यक्ति ने मेरे सिर की ओर खड़े हो कर मुझ को "भैया जी" के शब्द द्वारा सम्बोधित किया। अवाज़ भारी, गम्भीर तथा अधिकार-पूर्ण थी। पहाड़ी भाईयों की प्रथा ठीक निकली। मैं समझ गया कि मेरे स्वर्गलोक के साथी आ पहुंचे हैं। मुझे स्पर्श तो किया है, पर किसी अज्ञात शक्ति के भय से मेरे जैसे तुच्छ व्यक्ति को "बड़ा भैया" बनाया है। मैं चुप रहा, नमस्कार अभिवादन कुछ न किया। कुछ क्षणों बाद ही सामने सरोवर में स्नान करने की आवाज़ें सुनीं।

इन नए साथियों का बार-बार वर्णन करने के वजाए इन सम्बन्धी हालात एक बार ही संक्षेप में वर्णित कर देते हैं।

दूसरी रात, उसी समय, दो बजे फिर मेरी आंख खुली। एक सज्जन, लम्बे काले तथा लाल रंग के भयानक मुंह वाला मेरे आसन के बिल्कुल नज़दीक ही वैठा दिखाई दिया। डर मेरे भीतर लेश मात्र भी न था। गुरु-कृपा से मेरा साहस और भी बढ़ा हुआ था तथा उसकी ताड़ना करने ही लगा था कि मुझे समझा दिया गया कि "यह तेरा कुछ नहीं बिगाड़ रहा, इसको बैठा रहने दें।" मैं चुप हो गया पर रोष प्रकट करने के लिए उस की ओर पीठ कर ली। थोड़ी ही देर वाद फिर पहले की तरह जल में स्नान करने की आवाज़ें सुनाई दीं। दो चार दिन इसी तरह ही होता रहा, पर वाद में 'अमृत समय' (प्रभात के समय) वे मेरे पास कभी न आए। उस समय अगर वाहर निकलता तो स्निगध्ता सी प्रतीत होती, जैसे कोई किसी भीड़ में चल रहा हो। दो तीन दिन जव मैंने कुछ ना देखा न सुना तो कुछ उदास हुआ कि मेरे मध्य रहते हुए साथी नहीं मिल रहे हैं। अपने मन में ही एक प्रतिज्ञा की

तथा उसी रात ही सुन्दर दिव्य मूर्तियों को सरोवर में स्नान करते देखा।

पर दिन में तो कोई न कोई शुगल हमेशा बना रहता था। कभी अपना जाप करते हुए, शीघ्रता से मेरे पास से हो कर निकल जाते थे। एक बार दिन के ग्यारह बजे, घड़ियाल बजाते हुए, इन्द्र की सवारी जा रही थी। आवाज़ें तो दिन भर किसी न किसी ओर से आती रहतीं थीं, ये इतनी वास्तविक (real) होती थीं कि सब कुछ जानते हुए भी कई बार बाहर निकल कर देखता था कि शायद कोई यात्री न आया हो।

एक दिन गहरी संध्या के समय निवास पर लौटने से पूर्व गुरुद्वारा की परिक्रमा कर रहा था तो एक लाल शेर, धर्मशाला की पिछली ओर से निकल कर, मेरे पास से होता हुआ, दूसरी ओर की पहाड़ी के पीछे चला गया। यह मेरी ओर लगातार मुंह करके देखता रहा। मैंने भी ऐसा ही किया। पर मैं जी भर के हंसा यह असली शेर न था, कोई प्रेमी मेरे साथ कौतुक करने आया था।

श्री हेमकुण्ट पर मैं अढ़ाई महीने से अधिक लगातार नहीं रहा। जितनी बार रहा, एकांत का समय अधिक मिल जाता था। उन दिनों में यात्रा कम लोग करते थे। कई बार बारह दिनों तक किसी सज्जन के दर्शन नहीं होते थे। यह मैंने विशेष प्रकार से नोट किया कि जब कोई मनुष्य ऊपर होता था तो वहां सन्नाटा जैसा छा जाता था। देवलोक से जो थोड़ा बहुत सम्पर्क होता था, वह बिल्कुल टूट जाता था।

मेरा रोज़ का कार्यक्रम एक जैसा ही होता था। अमृत समय (अरुणोदय) से पहले सरोवर में स्नान अवश्य करना, जिसका नागा कभी न पड़ा। नित्य क्रिया के बाद गुरुद्वारा की सेवा तथा

गुरु ग्रंथ साहिब का प्रकाश करना। फिर एक चमचा 'ग्रोवलटीन' तथा शुष्क दूध, शीत जल में घोल कर, नाशते के रूप में लेना। दोपहर तथा सांय को एक मुट्ठी भर (चार तोले) चने, एक-एक दाना करके खा लेने (कच्चे चने जो दो दिन भी जल में रखो तो नर्म नहीं होते)। इसके अतिरिक्त वहां मेरा अन्य कोई आहार न था, बिना शीत जल के। दिन को जब धूप कुछ समय रहती तो गुरुद्वारा के सामान, दरी आदि सुखा लेता। हर यात्रा के समय गुरु ग्रन्थ साहिब का एक साधारण पाठ खड़े हो कर अवश्य कर लेता। गुरु ग्रन्थ साहिब के लिए टीन की एक पेटिका 1955 में ही गोबिंदघाट से मंगवा ली थी। संध्या को सोदर के पाठ के बाद गुरुद्वारे में जोत जगा कर डेरे आ जाता।

इस पवित्र स्थान की मान-मर्यादा रखने के लिए, जूते श्री हेमकुण्ट के नीचे ही, किसी पत्थर के नीचे रखता था तथा शौच आदि के लिये उससे नीचे उतर कर जाता था। श्री हेमकुण्ट पर लकड़ी का खड़ाऊं प्रयोग करता था। वर्षा के समय छतरी से मोमजामा अधिक प्रिय लगता था।

एक वार मैं तप स्थान पर कुछ अधिक समय ठहरा। चनों के चूहे साथी थे, कुछ दाने आये गए यात्री प्रसाद के रूप में मांग लेते थे। मेरा राशन समाप्त हो गया। एक छोटा सा जत्था कुछ समय के लिए आया, पर उन्होंने मूल्य ले कर कोई खाने वाली वस्तु देने से इन्कार कर दिया। कोई वस्तु मुफ्त ले कर खाना कभी भी अच्छा न लगा। आम लंगर का अन्न खाना मेरे लिये निषिध है। दो दिन भूखे ही रहना पड़ा, तीसरे दिन अचानक एक लम्बा सा युवक अकेला ही आ निकला। उसने एक रेशमी रुमाल में कुछ पंजीरी बांध के हाथ में पकड़ी हुई थी, जो मूल्य ले कर उस ने मेरे हाथ में पकड़ा दी। बाद में उसके जाने का कोई पता न चला। ऐसी स्वादिष्ट पंजीरी मैंने कभी न

खाई थी। इस प्रकार नीचे से मज़दूर पहुंचने तक निर्वाह हो गया।

मेरा परिधान सूती कमीज, पायजामा तथा दो या तीन स्वैटर होता था। गर्म जल पीने तथा आग सेकने से ठंड अधिक प्रतीत होती है। इनका मैं पहले से ही प्रयोग न करता था।

एक सच्चाई प्रकट देना आवशयक प्रतीत होता है। श्री हेमकुण्ट तप-स्थान पर, लम्बे समय तक, थोड़े कपड़ों तथा अल्प आहार द्वारा अकेले रहना, बिना विघ्न के सारी क्रिया नित्य प्रति निभनी, कभी सिर दर्द तक न होना, मेरे अपने बल या साहस का परिणाम न था, यह केवल गुरुदेव की अपनी कृपा तथा दया का प्रताप था।

शहीदी पहरा

आजकल तो आम भाषा में, हर उस व्यक्ति को 'शहीद' कह दिया जाता है, जो किन्हीं राजनैतिक या सामाजिक कारणों से शरीर का परित्याग कर देता है। पर शुद्ध अर्थों में शहीद उसे ही माना जाता है, जिसका इस संसार में दोबारा जन्म न हो, मुक्त हो जावे। ऐसा सौभाग्यशाली प्राणी वही होता है जो धर्म के किसी पक्ष के हेतु शुद्ध मन, इच्छा रहित हो कर अपने प्राणों पर खेल जाए। भजन बंदगी, प्रभु स्मरण करने वाला, उच्च जीवनयापन करने वाला ही इच्छा रहित हो सकता है। ऐसी शहीदी फौजों (सेना) के स्वामी, इस समय मे सतगुरु सच्चे पातशाह दशमेश जी है।

जो शहीद सत्गुरु के चरण-कमलों में जा विराजते हैं। उनके मन तार तथा तराव की भांति गुरु के साथ एक होते हैं। वे "हुकम" में विचरते हैं। इनमें अथाह (अपार) शक्तियां होती हैं। दूर, नजदीक, हर बात की सोझी होती है; अन्तर्यामी हैं। अपना आकार भी छोटा बड़ा बना लेते हैं। इनके भीतर शक्तियां देवताओं से बहुत अधिक होती हैं। इनको देख कर देवता दौड़ नहीं जाते, पर मन में काफी भय रखते हैं। शहीद अमर है तथा देवता जन्म-मरण धारण करते हैं।

इनका परिधान, आम तौर पर लग भग निहंगों जैसा होता है, जिसका रग नीला या सफेद होता है। कई शांत तथा कुछ स्वभाव में तेज होते हैं।

सत्गुरु की आज्ञा में, ये देश-प्रदेश सारी पृथ्वी पर विचरते हैं तथा विभिन्न स्थानों पर, भिन्न-भिन्न प्रकार से निवास करते हैं। कई गुरुद्वारों में इनका पहरा रहता है। पाकिस्तान में भी यह बात देखी गई है, पर यह हमारा विषय नहीं।

जिस प्रकार "पज सुच्चे मोती" पुस्तक में कहा गया है, इनका पहरा गुरु के प्यारों के साथ भी रहता है। आवश्यकता पड़ने पर, ये भांति-भांति के तरीकों द्वारा सहायता करते हैं। परन्तु कुमार्ग पर चलने पर दण्ड भी बहुत देते हैं। यदि विस्तार पूर्वक इनके सम्बंध में लिखें तो एक लम्बी कहानी बन जाती है।

शहीदी पहरा श्री हेमकुण्ट पर भी कम या अधिक मात्रा में रहता है। इस स्थान पर जाने वाले लम्बे तथा कठिन मार्ग के यात्रियों को कई प्रकार से खतरा हो सकता है। जरूरत के समय यह पहरा प्रेमियों की कई गुप्त तरीकों से सहायता करता है। पर जैसे कई सज्जनों के देखने में आया है, प्रकट हो कर भी ये अपना रूप दिखा देते हैं। बहुत से उदाहरण देना ठीक नहीं। यहां एक छोटी सी बालिका का एक छोटा सा उदाहरण दे कर

बात समाप्त करते हैं।

जून 1974 में, दिल्ली का एक दल जब भयूडांर ग्राम से आगे घाघरिया की ओर जा रहा था, तो एक हिन्दू भाई की छ: साल की कन्या, जत्थे से अलग हो कर पीछे रह गई। सुनसान जंगल में यह अकेली, भय के मारे, घुटनों में सिर दे कर, जमीन पर बैठ गई तथा रोने लग गई। सत्गुरु को उसकी दशा पर दया आई। एक शहीद सिख ने प्रकट हो कर कहा कि "बच्ची तू रोती क्यों हैं ?" लड़की ने सिर उठाया, कुछ डरी पर साहस भी हुआ तथा जत्थे के साथ मिल गई। यह जत्था श्री हेमकुण्ट से वापिस हो कर पांवटा साहिब जा रहा था, जबकि लेखक भी उसी बस में था।

अंत में यह अनुमान लगाया जा सकता है कि इस कठिन यात्रा के गुरु-प्रेमी यात्री, प्राय: सत्गुरु जी की गुप्त सेवा की दृष्टि में रहते हैं। जो गुरु से विपरीत हैं, उनके बारे कुछ नहीं कहा जा सकता।

सत्गुरु दर्शन

सत्गुरु जी के "दर्शन" की वार्ता प्राय: होती रहती है। दर्शन से सम्बन्धित शब्द भी पढ़े जाते हैं। दर्शनों की मांग तो बहुत सारे प्रेमी करते ही रहते हैं। पर दर्शन के सिद्धांत की ओर हम कम ही ध्यान देते हैं, शायद।

जब गुरु साहिब इस संसार में प्रत्यक्ष रूप में प्रकट थे तो हर कोई उनके दर्शन करता था : शत्रु तथा मित्र, श्रद्धालु तथा

अश्रद्धालु, सेवक तथा विपरीत विचार रखने वाला, संसारी तथा भगत आदि। दर्शन करने वाला, जैसा गुरु साहिब को अपने मन में समझता था, जैसी भावना रखता था, जैसी उसकी मानसिक अवस्था होती थी, जैसा अनुभव रखता था, जहां तक उसकी दृष्टि अगम्य देश में खुली हुई थी, उसके अनुसार फल प्राप्त करता था।

सत्गुरु जी तो निर्वैर, सदैव ही कृपालु तथा दया-निधान हैं, और इच्छा पूर्ण करने वाले हैं। शत्रु को मुंह की खानी पड़ती थी। मित्र-भाव रखने वाला सहायता प्राप्त करता था, पर अश्रद्धालु के पल्ले कुछ नहीं पड़ता था। उनको गुरु अवतार जानने वाला ज्ञान तथा मुक्ति की प्राप्ति करता था। सांसारिक-व्यक्ति उनको जितनी महान शक्तियों का स्वामी समझता था, उसके अनुसार मन की मुरादें पाता था। कोई विरला त्यागी भगत जो गुरु को अकाल रूप जान लेता था, वह दर्शन करते ही मर मिटता तथा तत्क्षण ही गुरु में "लीन" हो जाता है। यही बात आज तथा कल के लिए भी कही जा सकती है।

आज दर्शन से तात्पर्य यह है कि सत्गुरु का सूक्ष्म स्वरूप प्रत्यक्ष अपने नेत्रों द्वारा देख सकता। यह कई प्रकार से हो सकता है। स्वप्न में, प्रत्यक्ष में नेत्रों द्वारा, नेत्र मूंद के अपने भीतर या समाधि आदि की अवस्था में।

सत्गुरु अपनी मौज के स्वामी हैं। उनको मजबूर नहीं किया जा सकता, किसी ढंग या साधन द्वारा। इस कारण दर्शन प्राप्त करने के लिए किसी भी नियम का सहारा लेना उचित नहीं। एक छोटा सा कीट, अथाह-सागर की बात क्या बता सकता है। इस लिए, इस विषय पर लिखते समय अकाल मूर्त सत्गुरु से क्षमा याचना चाहते हैं, भूल-चूक, अपना अनजान बालक जान कर क्षमा करें

अपने भीतर दर्शन तो जैसी किसी की सुरती होती है, जैसी श्रद्धा तथा विश्वास है, जिस स्तर तक अनुभव पहुंच चुका है, उसके अनुसार नाना प्रकार के, भिन्न-भिन्न ढंगों से होते हैं। सुरतियों का अंत नहीं अतः दर्शनों का अंत नहीं।

जिस प्रकार गुरुवाणी से हमको इशारे मिलते हैं, दर्शन के इच्छुक व्यक्ति को तीव्र-इच्छा, पूर्ण-प्रेम तथा दृढ़-विश्वास की आवश्यकता है, जिनके मन इस सीढ़ी पर अच्छी तरह टिक गए हैं, वे अपनी बातें आप ही जानते होंगे। सत्गुरु और सिख का एक अनोखा ही सम्बन्ध है तथा इसकी कहानियां भी अनोखी हैं। यह सम्बन्ध अनोखा भी नहीं, क्योंकि केवल यही एक सम्बन्ध है, जो सच्चा है तथा सदैव ही स्थिर रहता है। सत्गुरु से मिलाप के रास्ने पर चलने वाला हर यात्री जानता है कि वह कैसे-कैसे साहस प्राप्त करता है। तथा भांति-भांति के आत्मिक मण्डलों के दृश्य प्रकट रूप से उसके समक्ष आते हैं। पुजारी की यह बहुत निजी गाथाएं होती हैं, जो उसका इच्छा-रहित हृदय, अत्यन्त संकोच करता है, प्रकट करने से।

हमारा विषय साधारण साधक के गुरु-दर्शन प्राप्त करने का है। अकाल-मूर्त अन्तर्यामी-सत्गुरु जी तो हर स्थान पर प्रत्यक्ष हैं, हर घर में विराजमान हैं, पर कई नीची श्रेणी की सुरतियां, कुछ सामाजिक प्रभावों के अधीन, विश्वास, प्रेम तथा वैराग्य के झूले पर चढ़ कर, एक ऊंचा झूला लेती हैं; जो सामाजिक रूप में, ऊंचे स्तर पर पहुंच कर सतगुरु के चरणों को जा स्पर्श करती हैं। उनके मन को प्रेरित करती तथा दर्शनों की झलक, थोड़े समय के लिए नेत्रों के सामने आ जाती है।

सत्गुरु जी की कृपा हो तो ऐसे दर्शन तो किसी भी स्थान पर हो सकते हैं, पर इसका सम्बन्ध कई बार कुछ पवित्र गुरु-स्थानों से भी होता है। ऐसी सम्भावना श्री हेमकुण्ट के दर्शकों के

लिए विशेष करके देखी गई है तथा मानी जाती है। कई प्रेमी तो यही इच्छा धारण करके उस स्थान की यात्रा के लिए जाते हैं। लम्बा सफर, शारीरिक कष्ट, मार्ग की बाधाएं, इस पवित्र 15 हज़ार फुट की ऊंचाई पर बस रहे स्थान का एक अलौकिक दृश्य तथा अपनी प्रकार का एक नवीन वायुमण्डल, यात्री के मन में एक उत्साह उत्पन्न करता है, जो शुद्ध तथा प्रेम-याचक जैसा हो कर सत्गुरु कलगीधर के चरणों का स्पर्श प्राप्त कर लेता है।

कई सज्जन यह जानने की इच्छा प्रकट करते हैं कि किस-किस को दर्शन हुए तथा किस प्रकार हुए। ऊपर लिखित विस्तार सहित वर्णन का एक बड़ा अभिप्राय यह भी है कि बहुत अधिक जानने की आवश्यकता न रहे। सत्गुरु जी की निजी कृपाओं का अधिक प्रचार करना योग्य नहीं होता। पाठक वर्ग को निराशा न हो, इस लिए संकोच सहित एक दो उदाहरण दे रहे हैं।

गोबिंद घाट तथा श्री हेमकुण्ट के मध्य स्वप्न में तो किसी ने सत्गुरु के दर्शन किए होंगे, पर हमारी ज्ञातानुसार, सब से पहले प्रत्यक्ष दर्शन एक महिला को सन् 1951 में हुए।

एक महिला, श्री अमृतसर दरबार साहिब के एक पुराने पेंशन पा चुके पुजारी की पत्नी, अपने बड़े पुत्र के साथ, प्रसाद लेकर, श्री हेमकुण्ट के दर्शनों के लिए चली। उसके साथ चौकीदार भी था। घागरिया से श्री हेमकुण्ट तक अभी सड़क का निर्माण न हुआ था। ये तीनों यात्री जैसे-तैसे चढ़ाई चढ़ते गए। जब लगभग एक मील और चलना बाकी रह गया तो महिला इतनी थक चुकी थी कि एक पग भी और चलना उसे कठिन प्रतीत हुआ। चौकीदार ने उसको अपनी पीठ पर लाद के ले जाने में असमर्थता प्रकट की। सो लाचार, वह वहीं बैठ गई। उस का पुत्र तथा चौकीदार प्रसाद ले कर आगे चले गए। यह माता अपने मन में बहुत निराश तथा उदास हुई कि वह इतनी दूर चल कर भी आई पर पवित्र स्थान

के दर्शन उसे प्राप्त न हुए। उस जगह बैठे ही उसने पहले "जपुजी साहिब" का पाठ किया, फिर घुटनों में सिर दे कर बैठ गई। मन में उबाल उठे, प्रेम तथा वैराग्य की घटा छा गई तथा नेत्रों से आसुंओं की झड़ी लग गई। थोड़े क्षण ही इस दशा में व्यतीत हुए थे कि उसने एक आवाज सुनी। सिर उठा कर देखा, समक्ष श्री दशमेश जी खड़े थे। घोड़ा पास था, पर आप उस पर सवार नहीं थे। आप ने दो शब्द माई को कहे, जिस का उद्देश्य साहस बढ़ाना था तथा अतध्यनि हो गये। दर्शन! अचानक दर्शन! माई किंकर्तव्यविमूढ़ हो गई। मुह से कोई वचन न निकल सका। कोई वरदान मांगने की न सूझो। दैवी मुख पर इतना तेज था कि सामना न कर सकी। आप के वस्त्र तथा उनका रंग ही नोट करती रही, पर अपार प्रसन्न तथा सन्तुष्ट थी।

इसके उपरान्त, दर्शन तो और भी किसी-किसी को हुए होंगे। एक दो और ने भी कहा कि यात्रा करते हुए, उन्होंने कृपालु सत्गुरु के अपनी प्रिय संगतों के साथ-साथ चलते हुए दर्शन किए हैं। पर हम केवल एक और घटना बता कर इस कांड को समाप्त करते हैं।

1957 में, बीस बाईस महिलाओं तथा पुरुषों का एक जत्था श्री हेमकुण्ट के दर्शनों हेतु आया। बहुत सख्या में यह मर्यादा पालन करने वाले नित्य नियमों पर चलने वाले तथा सत्गुरु के चरणों के साथ प्रेम रखने वाले थे। ये दर्शनों के लिए विशेष प्रार्थना करके आए थे तथा रात को श्री हेमकुण्ट पर ठहरने का कार्यक्रम बनाया। ये सारे कुछ गुरुद्वारे के भीतर तथा, कुछ बाहर बरामदे में बैठ कर कीर्तन करने लगे। संध्या समय बादल घिर आए तथा छोटी सी आंधी बही। एक दो सिखों ने दौड़ते बादलों में घोड़े का शीश देखा तथा उनको विश्वास हो गया कि उनकी प्रार्थना स्वीकार हो गई है।

रात का गहरा अंधकार था। अभी आठ ही बजे थे कि चहुं ओर, पर्वतों के शिखरों पर कुछ सितारे जैसे चमकते दृष्टि-गोचर हुए जो नीचे को उतर रहे थे। थोड़े क्षणों के उपरान्त सारी घाटी में इस प्रकार प्रकाश हो गया मानों कई सूर्य प्रदीप्त हो गए हों। सरोवर की बाईं ओर दशमेश जी घोड़े पर सवार खड़े थे। उनकी दोनों ओर साहिबजादे थे। जो पहले सितारे जैसे प्रतीत होते थे, वे सत्गुरु के साथ सेना थी, जो अब सरोवर के चारों ओर स्नान करके किनारों पर बैठ गई। कोई ध्यान मग्न था, कोई धीरे-धीरे गुरुबाणी पढ़ रहा था। इतने में इस लोक में बसने वाले देवता स्थान-स्थान से निकले तथा लाईन बना कर माथा टेक कर आगे निकलते गए। जत्थे में से कई एक को सत्गुरु के दर्शन हुए। कुछ ऐसे थे जो केवल शहीद सिख ही देख सके। एक दो को केवल जल में स्नान करने की आवाज़ें ही सुनाई दी, पर देख कुछ न सके। कुछ मिनटों तक समस्त अलौकिक दृश्य समाप्त हो गया। फिर उसी प्रकार अंधकार था पर श्रद्धालुओं के हृदय वैराग्य, प्रेम तथा आनन्द से चमक रहे थे।

सम्मान तथा स्वच्छता की आवश्यकता

सम्मान एवं स्वच्छता के पक्ष से अब दर्शनाभिलाषी (यात्रीगण) कुछ ढीले पड़ते जा रहे हैं, इस कारण इस सम्बन्ध में कुछ लिखना आवश्यक प्रतीत होता है। लेखक का विचार है कि प्राचीन नियमों का उल्लंघन नहीं किया जाना चाहिये। यह बात उन सज्जनों के लिए अधिक विचारणीय है, जो ऊपर जा कर रात व्यतीत करते हैं।

इस पवित्र स्थान के दर्शनाभिलाषी जो श्रद्धालु अपनी यात्रा सफल करना चाहते हैं, उनको गुरु-प्रेम, श्रद्धा, विश्वास तथा शुद्ध मन के अतिरिक्त इस स्थान के सम्मान तथा स्वच्छता को ध्यान में रखने की बहुत आवश्यकता है। इसके द्वारा श्रद्धा बढ़ती है तथा इसके पालन न करने से श्रद्धा पर प्रहार होता है। शरीर पर कष्ट सहार लो पर सम्मान न छोड़ो (चाहे कोई देखता हो या नहीं) तो वह सम्मान सफल होता है। मन में एक अनोखी प्रसन्नता तथा श्रद्धा की वृद्धि प्रतीत होती है।

जिस भूमि पर कई सज्जन आ कर श्री गुरु-दर्शन की प्रार्थना करते हैं, वही अपने को थोड़े से कष्ट से बचाने हेतु, शौच-लघुशंका से धरती को गंदा (अपवित्र) करना किस प्रकार उचित समझते है? यह अशोभनीय है। ऐसा करने वाले सज्जन, यह भी विचार नहीं करते कि वर्षा के द्वारा सारी गंदगी, उस पवित्र सरोवर में मिल जाती है, जिस के जल में उन्होंने प्रभु-नाम लेकर डुबकी लगानी है, तथा जहां का जल बोतलों में भर कर अमृत-तुल्य मान कर अपने घरों को ले जाना तथा बांटना है। सरोवर के किनारों का जल तेज़ धारा से परिवर्तित हो कर बाहर बह नहीं रहा जो सफाई होती जाएगी। इस कारण श्री हेमकुण्ट के मैदान तथा आसपास की चढ़ाईयों पर दिशा-मैदान के लिए नहीं जाना चाहिये। मंदिर वाली ओर भी श्री हेमकुण्ट का भाग ही है। सरोवर भी एक ही है। इस लिए इस कार्य हेतु केवल कुछ उतराई उतर कर ही जाना चाहिये। इतनी कठिनाई उठा कर श्री हेमकुण्ट पर पहुंचते हैं, थोड़ा और कष्ट सहन कर लेना कोई कठिन बात नहीं है।

अब क्योंकि भाई वीर सिंह निवास-स्थान बन चुका है, जूते वहां तक ले जाए जा सकते हैं। उस से आगे चलने फिरने के लिए हर यात्री लकड़ी की खड़ावें साथ ले जाए।

जिन प्रेमियों ने ऊपर रात व्यतीत करनी हो, वे इस स्थान पर अल्प आहार करें (इसकी कमी नीचे जा कर पूरी की जा सकती है)। एवं संध्या होने से पूर्व ही जलपान कर लेवें, ताकि रात को बाहर न जाना पड़े। धन्यवाद !

अंत में कुछ अक्षर

श्री हेमकुण्ट सम्बन्धी संस्मरण तो बहुत दिनों से लिखे हुए थे, पर इनको श्री हेमकुण्ट के प्रेमियों की ज्ञान-वृद्धि हेतु छपवाने की ओर ध्यान नहीं गया।

श्री हेमकुण्ट ट्रस्ट वाले सरदार शमशेर सिंह जी हर वर्ष वहां जाते हैं तथा दूर-दूर से आए यात्रियों को साथ ले जा कर दर्शन करवाते हैं। आप 1974 में जब यात्रा हेतु ऊपर जा रहे थे, तब ऋषिकेश में आप के भीतर श्री हेमकुण्ट के लिए प्रेम, लग्न तथा सम्बन्धित गुरुद्वारे की उन्नति के लिये उत्साह ने मेरे मन के उस कोने को स्पर्श किया जहां श्री हेमकुण्ट की प्रेममयी स्मृति संजोयी हुई है। मैं उनकी बात अस्वीकार न कर सका। परिणाम स्वरूप इस पुस्तक में वही कुछ लिखने का प्रयत्न किया, जितना कि लिखना योग्य प्रतीत हुआ।

श्री हेमकुण्ट का आकर्षण भी अनोखा है। मेरे देखते-देखते जहां वर्ष भर गिने-चुने ही प्रेमी जाते थे, अब हजारों की संख्या में देश के कोने-कोने से तथा विदेशों से भी यात्री मन में बड़ा उत्साह लिए इस अनोखे एवं पवित्र स्थान के दर्शनों के लिये जाते हैं तथा आनन्दित होते हैं।

संगतों के सहयोग तथा ट्रस्ट के परिश्रम से, अब तक ऋषिकेश से ले कर श्री हेमकुण्ट तक निम्नलिखित स्थानों पर गुरुद्वारे स्थापित हो चुके हैं। इन गुरुद्वारों के साथ यात्रियों के ठहरने के लिए कमरे बनाए गए हैं। यह केवल आने जाने वाले यात्रियों के आराम का साधन ही नहीं, अपितु उन दूर-दराज पहाड़ों में जहां कि सिख-धर्म के प्रचार की कोई सम्भावना दिखाई न देती थी, अब एक प्रकार से स्थानीय प्रचार हेतु केन्द्र बन सकते हैं।

उत्तर-प्रदेश से आने वाले यात्रियों को कोटद्वार रेलवे स्टेशन से जाने वाली सड़क, श्री नगर में ऋषिकेश से आने वाली सड़क से मिल जाती है। पर यात्रा ऋषिकेश की ओर से अधिक चलती है।

ऋषिकेश से गोबिन्द घाट तक 170 मील की यात्रा बस द्वारा करनी होती है। गोबिन्द घाट से श्री हेमकुण्ट 11 मील की दूरी पर स्थित है; यह सारा मार्ग चढ़ाई वाला है। यात्री ऋषिकेश तथा गोबिन्द घाट गुरुद्वारों से यात्रा हेतु आवश्यक जानकारी प्राप्त कर सकते हैं।

1. ऋषिकेश	(ऊंचाई	1300 फीट)
2. श्री नगर	,,	1500 ,,
3. जोशीमठ	,,	6000 ,,
4. गोबिन्द घाट	,,	5000 ,,
5. घागरिया (गोबिन्द धाम)	,,	10500 ,,
6. श्री हेमकुण्ट	,,	15200 ,,

इति श्रीस्माप्तम

जपुजी साहिब टीका

प्रोफैसर साहिब सिंह, डी.लिट.

इस पुस्तक में श्री जपुजी साहिब का सरल हिन्दी में टीका है। इस टीके की एक विशेषता तो यह है कि इस की अर्थ-व्याख्या 'गुरुवाणी-व्याकरण' के अनुसार है और दूसरी इस के टीकाकार स्वयं गुरुवाणी के अनुसन्धान कर्त्ता हैं। गुरुबाणी का सही अर्थ-बोध करने के लिए यह पुस्तक एक अमूल्य निधि है।